ॐ

परम योगीश्वर याज्ञवल्क्य

लेखक—

पण्डित निरंजन शर्मा अजित

गमें

र्वोत्तम और
मू. १)

यि ज्योतिस्वरु

का संग्रह। मू. ≡

–परक, देवताओं
हिन्दीमें। मू. ४

उपनिषद जिसके वि
मू. ॥

सूर्यनारायणोपासना माहात्म्य। मू.

परम योगीश्वर
याज्ञवल्क्य

प्रथम संस्करण] दक्षिणा १॥) [संवत् २००७ वि.

लेखक—
पण्डित निरंजन शर्मा अजित
ज्ञानमंदिर इन्स्टीट्यूट,
४८, बाबुलनाथ चाल, चौपाटी,
बम्बई नं. ७

प्रकाशक—
पण्डित प्राणशंकर कुंवरजी शर्मा
व्यवस्थापक "शाकद्वीपीय-ब्राह्मणबन्धु"
४४, बाबुलनाथ चाल, चौपाटी, बम्बई नं. ७

मुद्रक—
श्रीयुत मधुकर रघुनाथ काळेवार
प्रफुल प्रिंटिंग प्रेस,
नानाशंकरशेट वाडी,
३८० ई, गिरगांव रोड, बम्बई नं. २

भरतपुर राज्य

तथा सन्निकटस्थ देशमें

संस्कृतके महान प्रचारक

और राजकीय संस्कृत विद्यालयके

पूर्वप्रधान--अध्यापक

परम आदरास्पद विद्यामार्तण्ड

विद्वद्-शिरोमणि

श्रीयुत पण्डित तोतारामजी महाराजके

करकमलोंमें

सा द र स म र्पि त

—निरंजन शर्मा अजित



भूमिका

परम योगीश्वर याज्ञवल्क्यका यह सुखद, मनोमुग्धकारी और ब्रह्म-ज्ञानोत्तेजक चरित सम्माननीय विद्वज्जनों और हिन्दूधर्माभिमानी जनताके करकमलोंमें अर्पित करते हुए अपार आनंद होरहा है।

कलियुगके प्रारम्भमें, सम्भवतः ऋषिमुनियोंकी अन्तिम पीढीमें याज्ञवल्क्यने जन्म लिया था—और कलियुगीय प्रारम्भिक वर्षोंमें सूर्य ब्रह्मकी उपासनासे जो दिव्यज्ञान उन्होंने प्राप्त किया था उसका सम्पूर्ण उदाहरण पूर्व युगोंमें भी नहीं मिलता है। इसी लिये इस परम योगीश्वर सूर्यशिष्य याज्ञवल्क्यका जीवनचरितभी सूर्यजयन्तीके सुपुनीत अवसरपरही प्रकाशित करना उचित और अभीष्ट ठहरा। इस निश्चयोपरान्त सूर्यजयन्ती पर्वके मध्यमें २०।२५ दिनही रहगये थ। अतः इतने स्वल्पकालमेंही हमें यह ग्रन्थ प्रस्तुत करना पड़ा है। फिरभी प्रयत्नपूर्वक वह सब सामग्री हमने उपस्थित करदी हैं जो इन दिनों उपलब्ध होती है।

यह बात पुस्तकावलोकनके समय भलीभांति विदित होजायगी कि सूर्यनारायणने परम प्रसन्न होकर अपने प्यारे शिष्यको शुक्ल यजुर्वेद, परिपूर्णज्ञान और लोकोत्तर विजयी जीवनसुख प्रदान करके उन्हें अपने कालमें सर्वश्रेष्ठ योग–ब्रह्मविद्याचार्यपद प्रदान किया था। ब्रह्मविद्या अथवा उपनिषदोंने सूर्यकोही परिपूर्ण परब्रह्म माना है। इन दिनों बड़ेबड़े विद्वान् भी बहककर अन्यान्य प्रभेदपूर्ण बातें कहने और सुननेके अभ्यस्त हो गये हैं। फिर उन भले आदमियोंके विषयमें क्या कहा जाय जो

विचित्र बुद्धि सम्पन्न पाश्चात्य विद्वानोंकी उस अनौखी खोजको वेदवाक्यसे भी अधिक मानते हैं जो केवल अटकलबाजी और अनुमानकोही सुदृढ आधार मानती ह। संसारकी सबसे पहली पुस्तक ऋग्वेद है और ऋग्वेदमें भी आदित्योपासनाका अस्तित्व प्रखरतम रूपमें विद्यमान है, फिर भी यह पाश्चात्य गुरुभक्त महानुभाव यही मानते हैं कि ग्रीस या यूनानसे सूर्योपासना जगतमें फैली है; वहांसे यह मध्यएशियाके तातार या सिथिया देशमें होकर भारतमें लायी गयी ह। वास्तविकता यह है कि यह वस्तु हिन्दूधर्मकी बुनियादमें विद्यमान है। उपनिषदें सर्वान्तर्यामी परब्रह्मकी बात कहती हैं तो वह आदित्यपरमेश्वरही होता है। उसीका अंश आत्मा है। यही आत्मा-परमात्माका प्रकरण है जिसे आद्य शंकराचार्यने दावेके साथ आधे श्लोकमें बताया है।

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थ कोटिभिः।
ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः॥

(विवेक चूड़ामणि)

करोडों ग्रन्थोंमें जिस बातको परिपूर्ण रूपसे कहनेका प्रयास किया गया है उसको मैं आधे श्लोकमेंही बता दूंगा—वह यह है कि केवल ब्रह्मही सत्य है, जगत मिथ्या है और जीवात्मा ब्रह्मस्वरूपही है, कोई अन्य वस्तु नहीं है।

हिन्दूधर्मकी आधारभूत, योगीजनोंकी परमगति स्वरूप, इस सूर्य ब्रह्मोपासनासे योगीश्वरने जो वस्तु प्राप्त की है वह अन्य किसी देवताकी उपासनासे किसी भी ऋषिमुनिने प्राप्त नहीं की। अतः योगीश्वर याज्ञवल्क्यका चरित प्रकाशित करनेमें पहला लक्ष्य यही है कि

शुद्ध उपनिषदात्मक सूर्यब्रह्मोपासनाके महत्वका परिचय दे दिया जाय। दूसरा लक्ष्य यह है कि इस सूर्यशिष्यके आदर्श जीवनसे हम अपने जीवनोंको नये सांचेमें ढालना सीखें।

दैवत्वसे, ऋषिमुनियोंके नामसे, धर्म शब्दसे, सात्विक जीवनसे और योगात्मक ज्ञानसे जिन्हें घृणा होचुकी है उनसे हमें कुछ भी कहना नहीं है। भगवति उन्हें सुबुद्धि दें इतनाही कहना अलम है उनके विषयमें। किन्तु हिन्दुत्व और ईश्वरत्वका जिनके हृदयोंमें अभी प्रभाव बना हुआ है उन्हींके हितके लिये हमने इस चरितको उपस्थित किया है। फिर भी हमारा यह दावा है कि योगीश्वर याज्ञवल्क्य पढ़कर बड़ेबड़े विपथगामियोंके हृदयोंमें ज्योतिकी दमक एकबार तो अवश्यही पैदा हो जायगी।

भौतिकता वादी या आधुनिक संसारी जन केवल संसार सुखके लिये प्राण देते हैं—पर पा उसकोभी नहीं सकते। प्राचीन आर्यगण "धर्मादर्थश्च कामश्च" (धर्मसेही परलोक सुखके साथ संसारका सुख भी मिलता है) मानते थे। वह एक पन्थ दो काज सिद्ध कर लिया करते थे, हम संसारी जन सैकड़ों पन्थपर चलते हैं तो भी सुख नहीं पाते। यही बात दूसरी है जिसको हम उपस्थित कर रहे हैं।

महा योगीश्वरके जीवन कालके सम्बन्धम सुनिश्चित रूप से इतनीही बात बतायी जा सकती है कि वह महाराज परीक्षितके पुत्र जनमेजयके शासनकालमें विद्यमान थे। इन्हींके हाथों राजा जनमेजयने अश्वमेध यज्ञ कराया था और इन्हींका शिष्य अपने पुत्र शतानीकको बनाया था।

अर्जुनका पुत्र अभिमन्यु था, अभिमन्युका पुत्र हुआ परीक्षित। राजा परीक्षितके शासन कालमें २५ वर्षोपरान्त कलियुगारम्भ हुआ। कलियुगारम्भ कालमें परीक्षित विचित्र दैवी संयोगोंमें स्वर्गवासी ह गये थे। इस प्रकारसे यह बात स्पष्ट है कि कलियुगकी पहली शताब्दीके प्रथम चतुर्थांशमें ही योगीश्वरका भी कार्यकाल मानना होगा। कलियुगारम्भको ५०५१ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इसका अर्थ यह है कि आजसे कोई पांच हजार वर्ष पूर्व योगीश्वरका कार्यकाल माना जाता है। इस बातको हम इस प्रकारसे भी कह सकते हैं कि ईसवी संवतके जन्मकालसे भी कोई ३१०१ वर्ष पूर्व योगीश्वर भारतमें विराजमान थे। किन्तु पाश्चात्य पद्धतिवाले देशी-विदेशी विद्वान उस हिसाबको अशुद्ध मानते हैं जिसे प्रत्येक आस्तिक हिन्दू संकल्पके समय सावधानीपूर्वक "कलियुगे कलिप्रथमचर्णे" क साथ दोहराता रहता है। वह तो अभिमन्युके महाभारतीय काल को भी इतना लम्बा होजाने देनेको तैयार नहीं हैं—फिर अभिमन्युके पुत्र परीक्षित तथा पौत्र जनमेजयके कालको इतना लम्बा क्यों मानने लगे।

महाभारत कालको अनेक विद्वानोंने कई रूपमें प्रागईसाकाल माना है। इसकी वानगी निम्न प्रकार है:—

राव विसाजीपंत लेले	६३०६
मि. ह्वीलर	६०००
राव जनार्दन वालाजी मोडक	५०००
राव चिन्तामणि विनायक वैद्य	३०००
राव जनार्दन सखाराम करंदीकर	१९३४

ब्रा. सतीशचन्द्र विद्याभूषण	१९२२
डा. पारगीटर	१८००
जी. डी. शास्त्री चुलैट	१९००
लोकमान्य तिलक	१४९८
राधा कुमुद मुखर्जी	१४५०
रमेशचन्द्र दत्त	१३९८
डा. सीतानाथ प्रधान	१२५०
प्रोफेसर टी. जी. काले	११९३
केशवराव दफ्तरी	१११७

सारांश यह कि नवीनपद्धति काल निर्णयमें अनिश्चयका बोलवाला है तथापि इतना सुनिश्चित है कि वे परीक्षितके पुत्र जनमेजयके समकालीन थे। और हमारे लिये यही बहुत है।

उनकी जातिके सम्बन्धमें भी ऐतिहासिक जनोंने मतभेद पैदा कर दिया है। उन दिनों तक पंचद्रविड़—पंचगौड़ादि ब्राह्मणोपभेद थे ही नहीं। जिन स्थलोंपर शाकद्वीपसे ब्राह्मणोंको बुलानेकी कथा है, उन स्थलोंपर भारतीय ब्राह्मणोंके भेद उपभेदमेंसे किसीका भी नामोल्लेख नहीं है। ऐसा माना जाता है कि बौद्धकालोपरान्त आद्य शंकराचार्यजीके समय और उसके पश्चात भेदभाव हुआ है। फिर भी याज्ञवल्क्यके सम्बन्धमें दो ब्राह्मण जातियाँ दावेदार हैं। नागर ब्राह्मण अपनी परम्पराओंके साथ स्कंद पुराणके कुछ स्थलोंको मिलाकर कहते हैं कि याज्ञवल्क्यके पिता नागर ब्राह्मणवंशोत्पन्न थे, पीछेसे वे अमुक अमुक स्थलोंसे उठकर जाते हुए मिथिलमें बस गये थे। मैथिल ब्राह्मणोंका दावा है कि याज्ञवल्क्य मैथिल थे। मिथिलामेंही जन्मे और मिथिलामेंही जनककी राजसभामें विजयी होकर श्रेष्ठत्वको प्राप्त हुए थे। मिथिलावासी वे अवश्य थे।

विज्ञजनोंके लिये इतनाही पर्याप्त है कि योगीश्वर ब्राह्मण थे; किस जातिके थे यह बात उतना महत्व नहीं रखती जितना ब्राह्मणवंशोत्पन्न होनेकी बात महत्व रखती है। वे परमोच्चकोटिके महामहिम थे और सूर्यनारायणके भक्तोंकेशिरमौर थे, इसी लिये सूर्यब्रह्मोपासक शाकद्वीपीय ब्राह्मण जाति उनको अपना मानती है—पर उसके पास भी अधिक प्रमाण नहीं हैं। उन दिनोंतक द्वारका और कृष्णकी जन्मभूमि छोड़कर बिहारमें शाकद्वीपीय पहुंच पाये थे या नहीं, यह बात प्रमाणित नहीं होती तब तक अंधेरेमें तीरन्दाजी करनेसे कोई लाभ नहीं है।

हमारे ऋषिमुनियोंने हिन्दूसंस्कृतिमें सन संवतों और तिथियोंको इतना महत्व नहीं दिया है जितना इन दिनों दिया जाने लगा है। उनका कहना तो यही रहा है कि यह रत्न रहा, इसको परखिये और बताइये कि यह सर्वश्रेष्ठ अथच बहुमूल्य है या नहीं। हमसे इस विषयमें विवाद मत कीजिये कि किस तारीखको, किस तिथिको, किस वारको, किस मासको, किस संवत्सरादिमें, किस व्यक्तिने, किस खानसे इसको निकाला था और फिर किनकिन हाथोंमें होकर यह रत्न यहांतक आया है।

इन विषयोंके विवाद और झमेलोंमें वही पड़ा करते हैं जिनको मुख्य वस्तुकी परख नहीं है। और यह विवाद अति प्राचीन कालसे सम्बन्ध रखनेके कारण सामान्य कसौटीकी परखमें आ सकनेवाले रह भी नहीं गये हैं।

पर जाज्वल्यमान, पवित्र, चमत्कारी और लोकोपकारी ज्ञानमय जीवन आपके सन्मुख है। इस जीवनकी पवित्रताको परखिये, इसके सिद्धान्तोंकी प्रभापूर्णताको निहारिये और सूर्यके शिष्यत्वकी महिमा एवं गरिमाको देखिये।

—निरंजन शर्मा अजित

परम योगीश्वर
याज्ञवल्क्य

अनुक्रमणिका

——:o.——

साम्ब और याज्ञवल्क्य

सूर्य-नाम-धेय-संयुक्त परब्रह्मके परम कृपापात्रोंकी गणना करते हुए, पुराण कालमें, परम योगीश्वर याज्ञवल्क्यका नाम साम्बके बाद सर्वाग्रगण्य है ! साम्बने सूर्य मन्दिरकी स्थापना करके, जम्बू द्वीपमें सामान्य रूपेण तथा परम पुनीत भारत भूमिमें मुख्य रूपेण, सच्चे स्वरूपमें परब्रह्मोपासनाका साकार प्रचार किया था। वेदोंमें जब सौरसूक्त मौजूद है, जब वेदोपनिषदोंमें सूर्यके ही परब्रह्मस्वरूप होनेके पक्षमें प्रमाण भरे पड़े हैं और जब गायत्री महामंत्रका देवता सविता ही है, तब यह कहना निराधार ही माना जायगा कि यह नितान्त नवीन वस्तु थी और इसको विदेशोंसे लाकर भारतमें फैलानेका प्रयत्न किया गया था। पर साम्बकी सिद्धिसे पूर्व साकार सूर्योपासनाकी विधि जाननेवाले देशमें नहीं रह गये थे, यह बात देवर्षि नारद, महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास, और भगवान् श्रीकृष्णके बचनोंसे सिद्ध है। यह बातभी सिद्ध है कि सफल वरदान प्राप्तिके निमित्त प्रयुक्त की जा सकने वाली निराकार सूर्य ब्रह्मोपासना भी उन दिनों लुप्तप्राय ही थी। पर साकार उपासनाका ज्ञान उन दिनोंमें भी सबको था—यह बात न होती तो राजकुमार साम्बने मित्रवनमें एकान्त योग साधनके समय, जलकी लहरोंपर उल्टी चढ़कर चली आती हुई काष्ठमयी चमत्कृत प्रतिमाको न पहचान पाया होता। उन्होंने देखते ही पहचान लिया कि प्रतिमा तो सूर्यनारायणकी ही है। इसका अर्थ यह है कि उनको भी अन्य देवताओंकी प्रतिमाओंकी

भांति ही सूर्यनारायणकी प्रतिमाके स्वरूपका ज्ञान था । इसी आधार-पर हम यह कह सकते हैं कि सूर्यब्रह्मोपासना, उन दिनों, लुप्तप्राय-सी भले ही हो रही थी, पर उसका अस्तित्व उस समय भी था ।

साम्बने कांचन शरीर प्राप्त किया, अमृतत्व पाया और सूर्यके इतने प्यारे भक्तोंमें अपना नाम गिनाया कि, भगवान्‌के वरदानके अनुसार, साम्बका नाम लेकर की गयी सूर्योपासना और अर्चना अत्यधिक फलवती होती है । उन्होंने शरीर शुद्धिके पश्चात् निश्चल-नेहमयी भक्तिकी ही तो मांग की थी ।

याज्ञवल्क्यने शरीरके लिये नहीं, ज्ञानगरिमाके लिये उपासना की थी । इनको भी साक्षात्कार हुआ, उन्हें भी साक्षात दर्शन हुए थे । पर इन्होंने वह ज्ञान मांगा जो, उन दिनों, सबसे बड़े वेदज्ञ वैशम्पायनको भी अज्ञात था । फलतः योगमें और ज्ञानमें याज्ञवल्क्य इतने भरपूर हुए कि उनकी समानता करनेवाला कोई ऋषि-महर्षि, उनके पश्चात, आज तक नहीं हो पाया है । भगवान् भास्करने इनको श्रीमुखसे शुक्ल यजुर्वेद दिया । योगीश्वर याज्ञवल्क्यने जबतक यह वेद स्वयं नारायणसे प्राप्त नहीं किया था, तबतक शुक्ल यजुर्वेद भी कल्पारम्भसे विलुप्तप्राय ही था ।

सारांश यह कि द्वापर और कलियुगके संधिकालमें साम्बसे अधिक महान कोई सूर्यभक्त नहीं हुआ और कलिके प्रारम्भमें योगी याज्ञवल्क्यसे अधिक गौरवगरिमाविशिष्ट कोई भास्करभक्त नहीं हुआ ।

इन भक्तोंके चरित ध्रुव और प्रह्लादके चरित्रोंसे कम पतितपावन नहीं हैं, पर लोग इनको भूलते चले आते हैं । इसीलिये इनके चरित्रोंके प्रचारकी आवश्यकता है । ज्ञानियों, ध्यानियों और योगियोंके लिये यह परम अद्भुत चरित अलौकिक आह्लाद और परम कल्याण प्रदान करनेवाले हैं ।

———

सूर्यनारायणकी आराधना

विस्तारमें न जाकर, श्री विष्णुपुराणसे, हम वह परम पापनाशकारी तथा पुण्यप्रवर्धन क्षमताशाली स्तोत्र यहां, सर्वप्रथम, उद्धृत करते हैं जिसका पाठ याज्ञवल्क्यने तपस्याके दिनोंमें किया था:—

नमस्सवित्रे द्वाराय मुक्तेरमित तेजसे ।
ऋग्यजुस्सामभूताय त्रयी धाम्नेच ते नमः ॥

अतुलित तेजस्वी, मुक्तिके द्वारस्वरूप तथा वेदत्रयरूपी तेजसे सम्पन्न ऋगस्वरूप, यजुस्वरूप, सामस्वरूप-सविता देवको प्रणाम है ।

नमोऽग्निषोम भूताय जगतः कारणात्मने ।
भास्कराय परं तेजस्सौषुम्नरुचि बिभ्रते ॥

अग्नि और चन्द्रमा स्वरूप सूर्यको प्रणाम है । जगतके कारण और सुषुम्न नामक परमतेजको धारण करनेवाले भास्कर भगवानको प्रणाम है ।

कलाकाष्ठानिमेषादि काल-ज्ञानात्म-रुपिणे ।
ध्येयाय विष्णु रूपाय परमाक्षररूपिणे ॥

कला, काष्ठा, निमेषादि कालज्ञानात्मक रूपवाले, ध्यान करने योग्य परब्रह्म स्वरूप विष्णुमय श्री सूर्य नारायणको प्रणाम है ।

बिभर्ति यस्सुरगणानाप्यायेन्दुं स्वरश्मिभिः ।
स्वधामृतेनच पितृंस्तस्मै तृप्त्यात्मने नमः ॥

जो अपनी किरणोंसे चन्द्रमाको पोषित करते हुए अपनी रश्मि राशिसे देवताओंको तथा स्वधामृतसे पितरोंको तृप्त करते रहते हैं, उन तृप्ति रूप सूर्य देवको प्रणाम है ।

हिमाम्बुघर्म वृष्टीनां कर्ता भर्ताच यः प्रभुः ।
तस्मै त्रिकाल रूपाय नमस्सूर्याय वेधसे ॥

जो हिम, जल, घर्म, वृष्टिके कर्ता हैं, और जगतके पोषण करनेवाले हैं, उन त्रिकाल रूप विधाता भगवान् सूर्यको प्रणाम है ।

अपहन्ति तमो यश्च जगतोऽस्य जगत् पतिः ।
सत्वधामधरो देवो नमस्तस्मै विवस्वते ॥

जो जगत्पति, इस सम्पूर्ण जगतके अंधकारको दूर करते हैं उन सत्व मूर्ति धारी विवस्वानको प्रणाम है ।

सत्कर्म योग्यो न जनो नैवापः शुद्धिकारणम् ।
यस्मिन्ननुदिते तस्मै नमो देवाय भास्वते ॥

जिनके उदित हुए विना मनुष्य सत्कर्ममें प्रवृत्त नहीं होते, जिनके उदित हुए विना जल शुद्धि प्रदान करनेवाला नहीं होता, उन भास्वान देव भगवान् सूर्य नारायणको प्रणाम है ।

स्पृष्टो यदंशुभिर्लोकः क्रियायोग्योहि जायते ।
पवित्रताकारणाय तस्मै शुद्धात्मने नमः ॥

जिनके किरण स्पर्शमात्रसे लोक शुभ कर्मानुष्ठानके योग्य होता है उन पवित्रताके कारण शुद्धस्वरूप सूर्यदेवको प्रणाम है ।

नमः सवित्रे सूर्याय भास्कराय विवस्वते ।
आदित्यायादिभूताय देवादीनां नमोनमः ॥

भगवान् सविताको प्रणाम है, सूर्यनारायणको प्रणाम है, भास्कर भगवान्को प्रणाम है, विवस्वान देवको प्रणाम है । देवताओं तथा समस्त सचराचरके आदि कारणभूत आदित्यदेवको बारम्बार प्रणाम है ।

हिरण्मयं रथं यस्य केतवोऽमृत वाजिनः ।
वहन्ति भुवनालोकिचक्षुषं तं नमाम्यहम् ॥

जिनका तेजोमय रथ है, प्रज्ञारूपिणी ध्वजाएं हैं, जिन्हें वेदछंदस्वरूप सप्त अमर अश्वगण वहन करते हैं, जो त्रिभुवनको प्रकाशित करनेवाले हैं, जो जगत् चक्षुस्वरूप हैं, उन सूर्यदेवको प्रणाम है ।

इस स्तोत्रके पाठोंसे परम प्रसन्न होकर भगवान् सूर्यअश्वरूपमें प्रकट होकर याज्ञवल्क्यसे कहने लगे:—

व्रियतामिति वांछितम् ।

वांछित फल मांग लो ।

याज्ञवल्क्यजीने उन्हें प्रणाम किया और कहा:—

यजूंषि तानि मे देहि यानि सन्ति न मे गुरौ ॥

भगवन् ! आप मुझे यजुर्वेदकी वे श्रुतियां दीजिए जिन्हें मेरे गुरु वैशम्पायनजी भी न जानते हों ।

यह वरदान मांगनेपर सूर्यनारायणने याज्ञवल्क्यजीको "आयातयाम" नामक वे श्रुतियां दीं जिन्हें वैशम्पायन भी नहीं जानते थे । इन श्रुतियों को पढनेवाले वाजी नामसे विख्यात हुए, क्योंकि इनका उपदेश प्रदान करते समय भगवानने वाजि (घोड़े) का स्वरूप ले लिया था । इस वेदकी कण्वादि १५ शाखाएँ हैं जो सबकी सब सूर्य नारायणसे सीधी प्राप्त होकर याज्ञवल्क्य द्वारा प्रचारित हुई हैं । यही शुक्ल यजुर्वेदका सबसे बडा महत्व है ।

पूर्ववंश परम्परा

याज्ञवल्क्यके सम्बन्धमें, श्रीमद् आद्य शंकराचार्यने, बृहदारण्यकका भाष्य करते हुए लिखा है:—

"एवमाहस्मोक्त्वा किल याज्ञवल्क्यो।
यज्ञस्य वल्कः वक्ता यज्ञवल्कः, तस्य अपत्यं
पुमान याज्ञवल्क्यः।

अर्थ—यज्ञका वक्ता याज्ञवल्क होता है। उस यज्ञवल्कके पुत्रको पुकारा गया है याज्ञवल्क्य।

कृष्ण सूरि कृत वेदतत्व निरूपण में लिखा है:—

यज्ञानां यज्ञकाण्डानां वेदानां वल्कः वक्ता वचन
शीलः यज्ञवल्कः पृषोदरादित्वाद्वल्क शब्दः साधुः
ब्रह्मरातो महा कर्मठः। तस्य गोत्रापत्यं पुमान्याज्ञवल्कः

अर्थात्—यज्ञवल्कः वेद-यज्ञ-कांडके वक्ताको कहा जाता है। यह शब्द साधु ब्रह्मरातके लिये प्रयुक्त हुआ है। इसीलिये ब्रह्मरातके पुत्रका नाम याज्ञवल्क्य हुआ। ब्रह्मरातका नाम प्रचुर अन्नदानशील होनेसे वाजसनी भी था। इस नामके कारण याज्ञवल्क्यका नाम वाजसनेय भी है।

कई विद्वानोंने यह वंश परम्परा इस रूपमें समर्थित ठहरायी है:—

(१) नारायण, (२) ब्रह्मा, (३) अत्रि, (४) सोम, (५) बुध, (६) पुरूरवा, (७) विजय, (८) भीम, (९) कांचन, (१०) टोत्रक, (११) जह्नु, (१२) पुरु, (१३) वलाक, (१४) अजाक, (१५) कुशदर्शीरथ, (१६) कुशिक कुशाम्बु, (१७) गाधि इंद्रावतार, (१८)

विश्वामित्र, (१९) शुनः शेप या देवरात, (२०) कृति, (२१) शुनःपुत्र, (२२) अरायण (जो अरायणी शाखा, यजुर्वेदके प्रवर्तक हैं) । मालूम होता है कि यही अरायण देवरात, ब्रह्मरात, यज्ञवल्क वाजसनी आदि कई नामोंसे प्रख्यात एवं वर्णित हुए हैं ।

. १९ वें नम्बरमें वर्णित शुनःशेप या देवरात वास्तवमें अंगिरा कुलोत्पन्न अजीगर्त ऋषिके पुत्र थे, पर एक विशेष प्रसंगके कारण उन्होंने विश्वामित्रका दत्तक पुत्र होना स्वीकार कर लिया था । यह प्रसंग बड़ा मनोरंजक है । हम विस्तारमें न पडते हुए संक्षेपसे उसको यहां उपस्थित करना आवश्यक समझते हैं ।

वशिष्ठसे परास्त होकर विजयी राजा विश्वामित्रने "**धिक् बलं क्षत्री बलं, ब्रह्म बलैव केवलं बलम्**" स्वीकार करनेके बाद राजर्षि पद प्राप्त कर लिया था । फिर अनेक वर्षोंतक गायत्री मंत्रका (जो वास्तवमें सूर्यनारायणकाही महामंत्र है) जप करके ब्रह्मर्षि पद प्राप्त कर लिया । इसके कुछ कालोपरान्त राजा हरिश्चन्द्रने वरुण देवकी उपासना करके रोहित नामक पुत्र प्राप्त कर लिया था । पर पुत्र प्राप्तिका वरदान मांगते २ राजा कहीं यह प्रतिज्ञा कर गया कि उस पुत्रकी बलि हम वरुण देवको दे देंगे ।

पुत्र हुआ । दश दिनका हो जायगा तब बलि देंगे ।, मुंडन संस्कार हो जायगा तब बलि देंगे—इत्यादि कहते हुए राजा, वरुण देवतासे, चाल खेलने लगा, तो उसको जलोदार रोग होगया । अन्ततः प्राण रक्षाके लिये राजाने रोहितको बलि चढा देनेका निश्चय कर लिया । रोहितभी प्राण बचानेके लिये अगम्य वनोंमें भ्रमण करके जीवन व्यतीत करने लगा । पर अन्ततः थककर उसने लौटना ही निश्चय कर लिया । इसी समय

बलिकी पूर्ति किसी दूसरेके पुत्रकी बलिदेकर करलेनेपर, कष्ट निवृत्तिकी बात सुनिश्चित होगयी। इसके लिये अजीगर्त ब्राह्मणने अपना बिचला पुत्र शुनःशेव १०० गायोंकादान लेकर दे डाला। लिखा है कि अजीगर्तके तीन पुत्र थे। वह अतिशय दरिद्र था। पुत्र दे डालनेका प्रस्ताव सामने आतेही पिताने बड़े पुत्रको छातीसे लगालिया तो माताने छोटे पुत्रको दामनमें छिपा लिया। बिचला बेटा पशुकी तरह १०० गाय लेकर बेच दिया गया।

यज्ञ हुआ। इसमें जमदग्नि अध्वर्यु थे। विश्वामित्र होता बने थे। पर विश्वामित्र शुनःशेपको बचा लेना चाहते थे। इसी लिये उन्होंने स्तम्भसे पशुकी भांति बंधे शुनःशेपको उपदेश दिया कि तू 'हिरण्यगर्भ रथस्य' आदि ४ मंत्रोंसे सूर्य नारायण को मना, जिनके नाम अग्नि, सविता, भग, वरुण और इन्द्र हैं। इन मंत्रोंको जपनेपर शुनःशेपके बंधन कट गये और वही देवताका प्यारा होनेके कारण पहला देवरात हुआ। दैवी कृपा और चमत्कारके बाद पिताने घर लौट चलनेकी प्रार्थना की, पर शुनःशेपने पितृवंशको छोडकर, प्राणदान और मंत्रदान करनेवाले विश्वामित्रका विधिवत दत्तक पुत्र होना स्वीकार कर लिया था। इन्हीं देवरातकी चौथी पीढीमें वाजसनी देवरात हुए। इन वाजसनी देवरात के पुत्रही शुक्ल यजुर्वेदको "सूर्य नारायणसे प्राप्त करके" भूतलपर लानेवाले महायोगीश्वर याज्ञवल्क्य हुए हैं।

———

जन्म और बालपन

याज्ञवल्क्यके जन्म अवतारका सन संवत और मास तथा तिथि सुनिश्चित रूपसे दे सकना बड़ा कठिन है। इस विषयमें इतना ही सुनिश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि वह राजा परीक्षितके शासन कालके आसपास पैदा हुए होंगे, क्योंकि इनके पुत्र जनमेजयको याज्ञवल्क्यने ही प्रसिद्ध यज्ञ कराये थे।

यह बात और भी सत्य है कि देवरात ऋषिने याज्ञवल्क्यको सूर्यनारायणकी उपासना करकेही प्राप्त किया था, क्योंकि देरतक उनको पुत्र की प्राप्ति नहीं हो रही थी। आर्य जनोचित रीतिके अनुसार देव और पितर कार्योंके लिये पुत्र प्राप्ति हुए बिना स्वर्ग नहीं मिलता है। इसी लिये देवरातने सूर्य नारायणकी वंदना और उपासना करके याज्ञवल्क्यको प्राप्त किया था। स्कंद पुराणके नागर खण्ड और जाबाल संहितामें कहा गया है कि सूर्यनारायणसे देवरातने यह वरदान मांगा था कि आपही मेरे घर पुत्र रूपसे अवतार लें और इसी लिये सूर्यदेव एक, यज्ञ करते समय, अग्निकुण्डमेंसे दिव्यस्वरूपधारी बालकके रूपमें प्रकट हुए थे।

महाराष्ट्र प्रदेशमें अनेक स्थलोंपर याज्ञवल्क्य ऋषिके लिये उत्सव मनाये जाते हैं। इस प्रदेशमें परम पवित्र तीर्थक्षेत्र गिने जानेवाले पंढरपुरमें श्रावण शुक्ल १५ को उत्सव मनाया जाता है। ऐसा माना जाता है कि यही जन्मतिथि न हो तो निश्चय ही इसी दिन याज्ञवल्क्यने सूर्यनारायणसे यजुर्वेद प्राप्त किया था। इसीलिये यह दिन श्रावणीपर्व और उपाकर्मविधिके लिये ब्राह्मणमात्रको सर्वमान्य है।

संशय तिमिरमें याज्ञवल्क्यका जन्मदिन ज्येष्ठ शुक्ल १० अर्थात गंगा दसहरा कहा गया है।

मद्रासके कुछ विद्वान मानते हैं कि प्रभवनाम संवत्सरके कार्तिक मासके शुक्लपक्षकी नवमीको याज्ञवल्क्यका जन्म हुआ था। कई वर्ष पहलेतक मद्राससे याज्ञवल्क्य नामक मासिक पत्र भी निकलता था। इसके सम्पादक भागवत लक्ष्मीपति शास्त्रीने अपने पत्रके कार्तिक मासके अंकमें प्रकाशित किया था:—

ऊर्जेमासि सिते पक्षे विदिनेर्लग्नधनुष्केतथा
नक्षत्रे शततारके च सुमहान गर्भात्तवेदो मुनिः।
यो वै सर्वगुणाधिकः श्रतिमयो जातः सुनंदात्मजः
सोऽयं वाजसनेय रूपनृहरिः कुर्यात्सदा मंगलम्॥

अर्थात् कार्तिक मासके शुक्लपक्षमें नवमी रविवारको याज्ञवल्क्यका जन्म हुआ। उस समय धनुष लग्न, शततारका नक्षत्र युक्त थी। सुनन्दा इनकी माताका नाम था।

काशीके ब्रह्मानन्द सरस्वतीने भी याज्ञवल्क्य पूजा विधानमें जो अर्घ्य-मंत्र दिया है, उसमें भी याज्ञवल्क्यको सुनन्दा संजात ही लिखा है।

बड़ौदाके श्रीवामोरकरने अक्कलकोटके स्वामी महाराजका जो गुरु लीलामृत लिखा है उसमें पांचवां अध्याय जयन्तियोंके लिये सुरक्षित है। इस पांचवें अध्यायमें याज्ञवल्क्य उत्सवके लिये फाल्गुन शुक्ल पंचमी निश्चित की गयी है।

श्रीरामचन्द्र गोविंद कोलंबड़े (वकील-हुबली) ने श्रीमद्योगीश्वर याज्ञवल्क्य और याज्ञवल्क्य दर्शन नामके जो ग्रंथ मराठीमें प्रकाशित किये हैं, उनमें भी फाल्गुनमासके शुक्ल पक्षकी पंचमीको योगीश्वर याज्ञवल्क्यका जयंती दिवस माना गया है।

याज्ञवल्क्यका बाल्यकाल, ७ वर्ष तक, लाड़प्यारमें सुखसे व्यतीत हुआ। वह सुन्दर थे, तेजस्वी थे और मातापिताके लाडिले थे। ८ वें वर्ष यज्ञोपवीतोपनयन संस्कार हुआ। शाकल्यसे ऋगवेद, उद्दालक आरुणीसे मंत्रशास्त्र एवं हिरण्यनाभ कौशल्यसे योगशास्त्र आपने पढ़ा था। फिर मातुलके आश्रममें यजुर्वेद पढ़नेको, आप, भेज दिये गये। व्यासजीने वेदकी चार संहिताएं रचकर वैशम्पायनको यजुर्वेद संहिता दी थी। यजुर्वेदके लिये वही मुख्य आचार्य थे और उन्हींके आश्रममें यजुर्वेद पढनेकी इच्छा रखनेवाले तेजस्वी ब्रह्मचारी जाया करते थे।

विद्यार्थी जीवन

महाभारत युद्धोपरान्त जो शांतिकाल आया, वही याज्ञवल्क्यका विद्यार्थीजीवन काल था। यह समय एकसाथ महान ज्ञानियों और प्रवक्ताओंको जन्म देनेवाला काल होगया है।

यजुर्वेदके कुलगुरु और महाभारतके प्रवक्ता वैशम्पायन, आध्यात्मविद्याके प्रसिद्ध आचार्य उद्दालक आरुणि, ऋग्वेदके परमाराध्य आचार्य शाकल्य मुनि, योगशास्त्रके महामहिमज्ञानी हिरण्यनाभ, सांख्यशास्त्र प्रणेता कपिलमुनि, आध्यात्म और उपनिषद ज्ञानके आचार्य पिप्पलादि ऋषि, सांख्यवाद प्रचारक जैमिनी, सशरीर यमसदन रहकर जीवन-मरण और आत्माका शुद्ध ज्ञान लानेवाले नचिकेता, तत्वज्ञ सत्यकाम जाबाल, सम्राट जन्मेजय, और अन्तिम विदेहजनक राजा इसी कालमें भारतभूमिपर विराजमान थे।

ऋग्वेदाध्ययनकालमें विदग्ध शाकल्य ऋषिके आश्रममें एक महा-चमत्कार होगया—अभी याज्ञवल्क्य तपस्वी ब्रह्मचारी ही थे। आनर्त देशके राजा सुप्रियके घर उन दिनों चतुर्मास पूजा शाकल्यकी देखरेखमें होती थी। नम्बरवार प्रतिदिवस एक शिष्य शांतिपाठ और अभिषेकके लिये नियुक्त होता था। एकबार याज्ञवल्क्यका नम्बर आगया। राजा था वेश्याभक्त और प्रमादी। प्रारम्भमें उसकी ही बेपरवाही और कर्महीनतासे याज्ञवल्क्य खिन्न हो गये थे, फिर जब अभिषेकका समय आया और ऋषिदेवता-छंद-तथा विनियोग-सहित मंत्र पढ़कर जल छिड़कने लगे तो सुप्रिय राजाने मुस्कुराते हुए कहा,--देवता, अभी अभी मेरी नींद उचटी है, फिर भी मैं थोड़ा

अलसाया हुआ हूँ। इस लिये अभिषेकका जल उस स्तम्भपर छिड़कते चलो। योगीश्वरने ऐसा ही किया। पर जल छिड़कते छिड़कते सूखी लकडीका स्तम्भ हरा होगया।

ततः स पतिते तोये स्तम्भः पल्लव शोभितः।
तत्क्षणादेव संजज्ञे फल पुष्पैर्विराजितः॥

(स्कंद ६--१२९--२१)

यह चमत्कार देखकर राजा पलंगसे उठकर याज्ञवल्क्यको हाथ जोड़ते हुए बोलाः--

द्विजोत्तम! क्षमा कीजिये। मुझसे भूल हो गयी है। एक बार पुनः इन्हीं प्रभावपूर्ण मंत्रोंसे मुझपर जल छिड़कते हुए मंगलाभिषेक कीजिये; मैं आपको अतिशय प्रसन्न करके घर भेजूंगा।

ब्रह्मचारी याज्ञवल्क्यने कहा, तू अभागा और मर्यादाविहीन है। होमाग्निकी संतुष्टिके साथ ही मंत्राभिषिक्त जल सुफल प्रदायक होता है। तूने वह समय खोदिया। अब दोबारा नतो वह वस्तु सम्भव है और न मैं करूंगा। वस्त्रालंकार, हाथी, घोड़े, धन आदिके सब प्रलोभनोंपर लात मारकर ब्रह्मचारी याज्ञवल्क्य आश्रममें लौट आये। दक्षिणा लेना भी उन्होंने स्वीकार न किया!

तीसरे प्रहर राजाने आश्रममें पहुंचकर शाकल्य मुनिसे सविनय प्रार्थना की कि "कलभी उसी ब्रह्मचारीको भेजनेकी कृपा कीजियेगा जिसने आज अभिषेक कार्य किया था।" शाकल्यको उस प्रसंगका पताभी न था जिससे खीजकर याज्ञवल्क्य चला आया था। इस स्थितिमें शाकल्यने राजाको वचन दे दिया कि कल फिर ब्रह्मचारी याज्ञवल्क्यही इस निमित्त समय-पर पहुंच जायगा।

दूसरे दिन शाकल्य मुनिने याज्ञवल्क्यको फिर शांति अभिषेक के लिये जानेकी आज्ञा दी। याज्ञवल्क्यने कहा, जिस उद्धत राजाने अपमान करके आशीर्वाद ग्रहण करना उचित नहीं समझा और मंगलाभिषेकके जलको अश्वशालाके स्तम्भपर छोड़नेकी आज्ञा दी थी, उसके घर मैं कदापि न जाऊंगा; आप किसी दूसरे शिष्यको भेज देनेका अनुग्रह करें।

शाकल्यने शिष्यकी शक्तिकी प्रशंसा की और कहा कि उसी चमत्कारके प्रभावसे उसने तुझे फिर बुलाया है। राजाकी बातका बुरा माननेसे कोई लाभ नहीं होता है, इसीमें भलाई है कि तू जाकर उसको प्रसन्न करले। यही मेरी भी आज्ञा है। इतनेमें राजाके घर से तीन चार बुलावोंपर बुलावे आते रहे। अन्तमें नम्रतापूर्वक याज्ञवल्क्यने कहा:—

नाहं तात गमिष्यामि शान्त्यर्थं तस्य मंदिरे ।
अविलेपेन युक्तस्य शुद्धयाविरहितस्य च ॥

(स्कंद. ६-१२९-३२)

महाराज उस भ्रष्ट और उद्धतके घर में तो शान्त्यर्थ कदापि न जाऊंगा।

सुदृढतापूर्वक दिये गये याज्ञवल्क्यके इस उत्तरके बाद शाकल्य ने उद्दालक आरुणीको इस शुभ कार्य निमित्त भेज दिया। राजाने कल की तरह इसकी भी परीक्षा ले डाली। पर लकडीका लठा उद्दालक आरुणी के अभिषेक जलसे पल्लवित नहीं हुआ। कई दिन इसी तरह निकल गये। एक दिन राजाने स्वयम् आश्रममें आकर फिर याज्ञवल्क्यको राजी करके प्रेषित करनेकी प्रार्थना की, किन्तु याज्ञवल्क्य गुरुको

राजभय और धर्मसंकटमें पडा देखकर भी अडिग रहे। इस पर गुरुने कोप किया और गुरुद्रोही शिष्यको ब्रह्मशाप देनेकी तत्परता प्रकट की। याज्ञवल्क्यने कहा कि यह कार्य अविचारपूर्वक होगा और अविचार पूर्वक कार्य करनेवाला गुरु भी त्यागने योग्य है। अतः शापके बदलेमें मैं भी आपको शाप दूंगा।

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते॥

(स्कंद–नाडारखंड अ० २७८)

अन्तमें क्रोधाविष्ट हुए गुरुने क्षुरिका मुंड कल्पसे शुद्ध हुआ जल ब्रह्मचारी याज्ञवल्क्यको, पढी हुई विद्या उगलकर भूल जानेके निमित्त दिया। याज्ञवल्क्य स्थिरतापूर्वक जलपान कर गये। क्षणोपरान्त उनको उलटी हुई और उन्होंने सब खाया पिया इस तरह निकाल दिया जिस तरह हाथी क्रीडा करता करता पिये हुए जलको निकाल देता है।

अन्तमें ब्रह्मचारीने, शिथिलता दूर होते होते, कहा––

लीजिये; अब आपका एक अक्षरभी मेरे पास नहीं है। अब मैं जाता हूँ। आप मेरे लिये कोई नहीं रहे; मैं भी आपके लिये आजसे कोई नहीं रहा।

———

वैशम्पायनके आश्रममें

शाकल्यमुनिके आश्रमको नमस्कार करके, उनका शिष्यत्व छोड़कर और उनसे प्राप्त हुए ऋग्वेदको लौटाकर, याज्ञवल्क्य वैशम्पायनके आश्रममें प्रविष्ट हो गये। उन दिनों वैशम्पायन व्यासजीके प्रमुख शिष्योंमें गिने जाते थे। विशेष रूपेण वे यजुर्वेदके परमादरणीय आचार्य थे। संयोगवश वैशम्पायन याज्ञवल्क्यके मामा भी होते थे। इस आश्रममें आकर याज्ञवल्क्य अपनी बहुमुखी प्रतिभा और मेधा शक्तिसे शीघ्र ही प्रमुखत्व प्राप्त करते हुए अग्रसर होने लगे। सहपाठी भी आपका आदर करते थे और गुरुदेवकी भी परम कृपा थी। जो बात वर्षोंके अध्ययन और मननसे अन्य शिष्योंने प्राप्त नहीं कर पायी थी वही बात वैशम्पायन दिनों और सप्ताहोंमें प्राप्त करते चले गये। वह परम तेजस्वी थे। गुण-ग्राहकताकी शक्ति उनमें जन्मसे ही विद्यमान थी। वाणी पायी थी याज्ञवल्क्यने प्रगल्भ। वह दबकर वार्तालाप करना सीखकर भूतलपर नहीं आये थे। बड़ेसे बड़े आचार्यसे भी दो-दो बातें करके अपनी योग्यताको मनवालेनेकी साध उनमें परिपूर्णतासे विद्यमान थी।

वैशम्पायन भी किसीसे किसी प्रकार कम न थे। संसारके समस्त ज्ञानी ध्यानी एक ओर तो वैशम्पायन दूसरी ओर। जैसे गुरु थे, वैसाही चेला वैशम्पायनको मिल गया। इसने वैशम्पायनके आश्रमका मान बहुत ऊंचा कर दिया। पर वैशम्पायनमें अन्य सब विद्वानों और ब्रह्मवेत्ताओंको नगण्य माननेकी जो प्रवृति थी वह निरन्तर द्वेष-प्रसारका कारण होती चली गयी। ब्रह्मकुल अवगणनासे क्षुब्ध होता चला गया और वैशम्पायन

निस्तेज एवं ज्ञानगरिमा-रहित-ब्रह्मकुलोंके लिये अपनी भावनाको अतिशय उग्र एवं कठोर बनाते चले गये। अंतमें एक दिन ऐसा आ पहुंचा जब सबने मिलकर अपनत्वकी अंतिम परीक्षा लेते हुए अपनी तपोशक्तिका परिचय देनेका निश्चय कर लिया।

समस्त ऋषिमुनिगणने एक दिन निश्चित करके घोषणा की कि उस दिन सुमेरूपर्वतपर जो महायज्ञ होगा उसमें सबको उपस्थित होना चाहिये। जो कोई उपस्थित न होगा उसको ७ दिनके भीतर ब्रह्महत्याका महा पातक लगेगा।

ऋषियोऽद्य महामेरोः समाजे न गमिष्यति।
तस्य वै सप्तरात्रात्तु ब्रह्महत्या भविष्यति॥
पूर्वमेवं मुनिगणैस्समयो यः कृतोद्विज।
वैशम्पायन एकस्तु तं व्यतिक्रान्तवांस्तदा॥

(श्री विष्णुपुराण तृतीयांश अ० ५ श्लोक ४-५)

इस विश्वघोषणानुसार सब ही मेरु पर्वतपर नियत समयमें उपस्थित होगये थे। सबने शुभ कार्यमें भाग लिया, पर वैशम्पायनही एकमात्र ऐसे निकले जिन्होंने उक्त सर्वजनो-विघोषित आज्ञाका पालन न कर पाया। फलतः सात रात्रिके भीतर इनकोही, तपस्वियोंका शाप फलित होकर ब्रह्महत्याका पातक लग गया।

यह प्रसंग वायुपुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, विष्णु पुराण, श्रीमद्भागवत, आत्मपुराण आदिमें वर्णित है।

यह पातक ७ रात्रिके भीतरही महाविचित्र रीतिसे वैशम्पायनको लग गया। रात्रिके पिछले प्रहरमें वे शीघ्रतासे उठे और शौचादिसे निवृत्त होकर प्राथमिक धर्मकार्योंमें प्रवृत्त होनेके लिये अंधेरेमें ही चल पड़े। उनकी बहन छोटेसे बालकसहित भूमिपरही शयन कर

रही थी। उतावलीमें, वैशम्पायनका पैर शिशुपर पड़ गया; दैववशात् बालक परमधामकी यात्रा करता हुआ, ऋषि-मुनि-ब्राह्मणगणके शापको सफल कर गया।

वैशम्पायन इस पातकके कारण परम क्षुब्ध हो उठे। इसका कठिन प्रायाश्चित्त किये विना निस्तार नहीं होता। फलतः आपने अपने शिष्य-समूहसे प्रायश्चित्तके संबंधमें सम्मति मांगी और कहा कि शिष्योंको गुरुके हितमें प्रायश्चित्त करनेका भी अधिकार होता है।

शिष्येनाह स भो शिष्या ब्रह्महत्यापहंव्रतम्।
चरध्वं मत्कृते सर्वे न विचार्यमिदं तथा॥
अथाह याज्ञवल्क्यस्तु किमेभिर्भगवन् द्विजैः।
क्लेशतैरल्पतेजोभिश्चरिष्येऽहमिदं व्रतम्॥
(श्री विष्णुपुराण तृतीयांश अ० ५ श्लोक ७–८)

वैशम्पायनने कहा, हे शिष्यो! तुम सब किसी प्रकारका विचार न करते हुए मेरे लिये ब्रह्महत्यानाशक व्रत करो।

अन्य शिष्योंकी स्थिति देखते हुए परम तेजस्वी याज्ञवल्क्य बोले:—

गुरुदेव! इनसे क्या बनेगा? इन सबको आप व्यर्थ ही कष्ट दे रहे हैं। यह तो अल्प तेजवाले हैं। लाइये मैं अकेला ही आपके लिये यह व्रत करके हत्या और शापका परिहार कर दूंगा।

ब्राह्मणोंकी अवगणनाका फल इस शापदग्ध ब्रह्महत्याके रूपमें जिनको मिल चुका था, वह वैशम्पायन, ऐसा विदित होता है, याज्ञवल्क्यके इन अवज्ञापूर्ण वाक्योंसे अत्यधिक विचलित हो गये थे। यह भी सम्भव है कि अन्य शिष्योंकी त्यौरियोंपर भी बल आ गये हों। कुछ भी हो। क्रोधमें भरे हुए और विक्षिप्त–चित्त वैशम्पायनने तेजस्वी

याज्ञवक्यको एकदम बुरी तरह दुत्कार दिया। याज्ञवल्क्यकी इस दुर्जेय घोषणाको वायु पुराणने इस रूपमें दिया है--

याज्ञवल्क्य बोले:—

तिष्ठन्तु मुनयस्त्वेवे अहमेकः करिष्यामि, भगवन्।

हे मुनिगणों, आप ठहर जाइये। गुरुजी, मैं अकेला ही यह व्रताचरण करूंगा।

वैशम्पायनने याज्ञवल्क्यकी वाणीको धृष्टतापूर्ण और अनर्गल माना। वे परम क्रोधाविष्ट होकर बोले :—

निस्तेजसो वदस्येनान्यच्चं ब्राह्मणपुङ्गवान।
तेन शिष्येण नार्थोस्ति ममाज्ञाभंग कारिणा॥
मुच्यतां यत्त्वयाधीतं मत्तो विप्रावमानक॥

इन अन्य ब्राह्मण श्रेष्ठोंको तू निस्तेज बता रहा है? मुझे तुझ सदृश, गुरुकी आज्ञा न माननेवाले, शिष्यसे कोई प्रयोजन नही है; तू यहांसे निकल जा और जो कुछ वेदविद्या मुझसे पढ़ी है वह लौटाकर चला जा।

परम तेजस्वी याज्ञवल्क्यने कहा—भगवन्! मैंने तो भक्तिवश ही यह बात कही है। अब इसपर भी आप इतने रोषाविष्ट हो रहे हैं तो जाइये मुझे भी आजसे आपसे कोई प्रयोजन नहीं है।

यह कहनेके बाद याज्ञवल्क्यने हलकमें अँगुली डालकर रक्तप्लावित रूपमें वमन करते हुए कहा कि महाराजजी! यह आप अपनी यजुर्वेद विद्या संभालिये। अब आप मेरे गुरु नहीं रहे और मैं आपका शिष्य नहीं रहा।

निस्तेज धरे रह गये।

तेजस्वी आश्रमसे आसन उठाकर चल दिये।

गुरुसे अधिक गरिष्ठ

तेजस्वी याज्ञवल्क्य संसारी गुरुओंसे थक गये थे। एक गुरुसे उलझकर पढ़ा-पढ़ाया ऋग्वेद छोड़ा, दूसरेसे उलझकर पढ़ा-पढ़ाया यजुर्वेद छोड़ना पड़ा। और दोनों जगह भली बात कहते हुए तथा भलाई की भावनाका आश्रय लेते हुए भी बुराई पल्ले पड़ गयी। यह वस्तु तेजस्वी याज्ञवल्क्यके लिये असह्य हो उठी। उनको यज्ञोंका प्रचार करना था और अध्वर्यु होना था। इसलिये वे सोचने लगे कि हमें वह वस्तु मिलनी चाहिये जो वैशम्पायनके पासकी वस्तुसे भी अधिक विशुद्ध और परम कल्याणकारिणी हो। फलतः उन्होंने साक्षात् उन सूर्यनारायणसे वेद प्राप्त करनेके लिये तपस्या करना शुरू कर दिया जिनके रथके सातों घोड़े भी वेद-छंद-स्वरूप हैं। विष्णु पुराणने एक स्तुति दी है जिसे याज्ञवल्क्यने सूर्यनारायणकी योगाराधनाके समय सिद्ध किया था। श्रीमद्भागवतमें परब्रह्म सूर्यकी, याज्ञवल्क्य द्वारा की गयी, स्तुतिको स्तोत्रके रूपमें न देकर परमतात्विक गुणकीर्त्तनके रूपमें दिया गया है।

यही प्रसंग महाभारतके शांतिपर्वमें कुछ और विवेचनात्मक रूपमें दिया गया है।

घने अरण्यमें निवास करते हुए, उस विश्वामित्र सरोवरमें स्नान करके जो सविताकी आराधनापरक गायत्री महामन्त्रको सिद्ध करके ब्रह्मर्षि पद प्राप्त करनेवाले विश्वामित्र-ऋषिकी आराधनाका आधारस्थल है, याज्ञवल्क्य तप करने लगे। उन्होंने १ धाता, २ मित्र, ३ अर्यमा, ४ इन्द्र, ५ वरुण, ६ पूषा, ७ भग, ८ विवस्वान, ९ सांव, १० सविता, ११ त्विष्टा और १२ विष्णु नामक द्वादशादित्योंकी स्थापना और आह्वानादि-

पूर्वक उपासनाका क्रम, शीत, वात, वर्षा, घर्म इत्यादिकी चिन्ता किये बिना ही जारी रखा। हिंसक पशुओंके कोलाहल एवं चीत्कारसे भी याज्ञवल्क्य विचलित न हुए। ग्रीष्मकालमें तप्त शिलापर बैठकर भी वे मंत्राग्नि साधनमें निरत रहे। भोजन भी जबतब शरीर धारणमात्रके लिये कंदमूल-फलका कर लिया करते थे। निद्रा तो जाती ही रही थी।

इस प्रकार तपस्या करते करते कई वर्ष व्यतीत हो गये तो श्रावण-मासकी पौर्णिमाको ठीक मध्यान्हकालमें सूर्यनारायणने प्रसन्न होकर दर्शन दिये। याज्ञवल्क्य जगतकी आत्मास्वरूप परब्रह्म आदित्य-नारायणकी स्तुति करने लगे।

सूर्यनारायणने प्रसन्न होकर कहा कि हे वत्स! तूने गहनवनमें घोर तपस्या की है; अब जो मांगना हो वही मांग ले।

याज्ञवल्क्यने विनम्र और प्रणतभावसे कहा—प्रभो आप सर्वज्ञ हैं। मैं विचित्र प्रसंगोंमें पड़कर ऋग् और यजुर्वेद छोड़कर आपके चरणोंमें आया हूँ। हे कर्मसाक्षी महेश्वर! आप परम कृपा करके मुझे यह वर प्रदान कीजिये कि भविष्यमें मुझे कोई गुरु न करना पड़े........आपही मुझे वह वेद प्रदान करके कृतार्थ कीजिये जिसे मेरे गुरु वैशम्पायन भी नहीं जानते हैं।

यजूंषि तानि मे देहि यानिसंति न मे गुरौ ॥

सूर्यनारायणने प्रसन्न होकर याज्ञवल्क्यकी ज्ञानदृष्टि खोल दी और समस्त वेद-शास्त्र उनके अन्तस्थलमें उतर गये!

स तथेति प्रतिज्ञाय प्रविश्यादित्य वाजिनः
कर्णे पठत्ततो वेदोश्चतुरोऽपिच तन्मुखात् ॥

(स्कंदपुराण ना० खण्ड अ० २७५)

इत्युक्तो भगवान्सूर्यो याज्ञवल्क्यं महामुनिम् ।
वेदान्षडंग सहितान् रहस्यादि समन्वितान् ।
चतुरोऽध्यापयामास स्थापयित्वा रथे निजे ॥
(आत्मपुराण अ० ७ श्लो० ३८–४०)

इस प्रकार रथमें विराजे हुए ही सूर्यनारायणने वेद, वेदांग और उनका रहस्य याज्ञवल्क्यके घटमें उतार दिया । फिर गुरुको भी जिनका ज्ञान नहीं था ऐसी वेद ऋचाएं देनेके लिये उन्होंने तुरंत वाजि (सुंदर अश्व) का रूप ले लिया । ऋचाओंपर ऋचाएँ याज्ञवल्क्यको मिलती चली गयीं ।

सूर्यनारायणने यह भी वरदान उन्हें दिया कि तेरे सामने जो कोई २० बार तेरी निंदा करेगा, उसको तेरी जिह्वापर बैठकर शाप देते हुए, मैं, भस्म कर डालूंगा ।

जिस वेदको याज्ञवल्क्यने उगल दिया था, वह कृष्णयजुर्वेद कहलाया । उगले हुए वेदको तीतर बनकर चुगनेवाले सहपाठियोंने उसका प्रचार किया है इसलिये उसकी तैत्तरेय शाखा हो गयी ।

मध्यान्हकालमें, शुक्लपक्षकी पौर्णिमाको, साक्षात् परब्रह्मज्योतिस्वरूप आदित्यने जो वेद याज्ञवल्क्यको दिया वह सर्वथा देवप्रदत्त होनेके कारण शुक्ल यजुर्वेद कहलाया और उसकी माध्यन्दिनी मुख्य शाखा हुई ।

सूर्यनारायणके शिष्यत्वके प्रभावसे याज्ञवल्क्य अप्रतिम विद्वान, यज्ञ-विद्याके प्रवर्त्तक और ज्ञानगरिमागरिष्ठ हो गये । इनके पश्चात भारतमें फिर कोई ऐसा महापुरुष नहीं हुआ ।

वेद सम्प्रदाय

तपोबलसे शुक्ल यजुर्वेद प्राप्त करनेके बाद, याज्ञवल्क्यने सर्वसंकोच-रहित होकर अपना आश्रम स्थापित करके इसी ज्ञानका प्रसार कार्य शुरू कर दिया।

आदित्यनीमानि शुक्लानि यजूंषि।
वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते ॥

साक्षात् आदित्यसे प्राप्त की हुई शुक्लयजुर्वेदकी ऋचाओंका वाजसनेय याज्ञवल्क्य आख्यान करते हैं—इस वाक्यकी ध्वनिप्रतिध्वनिसे भारतका कोनाकोना गूंज उठा। बड़े बड़े विद्वान और ज्ञान-पिपासु शिष्ट ब्राह्मणोंका समावेश उनके शिष्योंमें होने लगा। कण्व, जाबाल, बौधेय, वत्स, पराशर, प्रभृति अनेक विद्वद्रत्न याज्ञवल्क्यकी छत्रछायामें आकर ज्ञानार्जन करने लगे। इसकी, शिष्योंके अनुसार १५ शाखाएं निर्मित कर ली गयीं और सर्वत्र प्रचार होने लगा।

शुक्लयजुर्वेदमें ४० अध्याय हैं। इनमें ३०३ अनुवाक् तथा १९७५ मंत्र हैं। इसी वेदके ५१ वें अध्यायमें वह पुरुषसूक्त है जो यज्ञानुष्ठान और वेदविद्याका प्राण माना गया है। इसीके चालीसवें अध्यायमें ईशोपनिषद है जिसने सब उपनिषदोंमें प्रथम स्थान प्राप्त किया है।

धर्मशास्त्रोंमें उल्लेख है कि पुराकल्पमें हयग्रीव भगवानने वेदोंका उद्धार करके सूर्यनारायणको संभलवा दिया था। उन्हींसे वेद फिरसे संसारको मिले हैं। इसका अर्थ यह है कि याज्ञवल्क्यसे पहलेतक शुक्लयजु-र्वेदमात्र संसारको सूर्यनारायणने नहीं दिया था। गीतामें भी भगवानने

यह कहा है कि यह विवस्वानयोग है जिसे पहले मैंनेही सूर्यनारायणको देदिया था। इसके बाद सूर्यनारायणसे ही यह निष्कामकर्मयोग जगत को मिला है। इस कथनका अर्थ भी उसी रूपमें लेना उचित है जो हयग्रीवावतारके सम्बन्धमें कथित है।

वेद-वेदान्तविद्याके समन्वयमें अनादिकालसेही दो सम्प्रदाय भारतमें माने जाते रहे हैं। एकका नाम (१) ब्रह्म सम्प्रदाय है (२) दूसरेका आदित्य सम्प्रदाय। ब्रह्म सम्प्रदायका रूप पीछेसे यह होगया है कि सूर्य-नारायणसे प्राप्त करके जो ४ वेद ब्रह्माने लोककल्याणार्थ प्रकट किये वे ब्रह्म सम्प्रदायान्तर्गत हैं और जो शुक्लयजुर्वेद बहुत युगोंतक सूर्यनारायणके पास सुरक्षित रहकर याज्ञवल्क्यको मिला उससे सम्बंध रखनेवाला आदित्य सम्प्रदाय है। अन्य सब सम्प्रदाय बहुत पीछेके हैं। आदित्य सम्प्रदायके अन्तर्गत एक अम्भिण्यादि स्त्री-ऋषिवंश है, दूसरा याज्ञवल्क्यादि पुरुष-ऋषिवंश है। अनेक आचार्य स्त्री-पुरुष वंशभेदको नहीं मानते हैं। श्रीमद् आद्यशंकराचार्यने इस भेदको सुस्पष्ट रूपसे मानते हुए स्त्री-वंशको अधिक गौरवास्पद रूपमें ग्रहण किया है।

जाबाल संहिताके प्रथम अध्यायमें माना गया है कि (१) ब्रह्म और (२) आदित्य सम्प्रदायोंमें, आदित्यवेद--सम्प्रदाय ही प्रधान है।

ऋग्वेदकी २१ शाखाएं हैं। इनमें अश्वलायन प्रभृति २० ब्रह्मसम्प्र-दायकी मानी गयी हैं। २१ वीं शाखा आदित्य-सम्प्रदायान्तर्गत है। इस शाखाको शांखायनी, वाष्कला किंवा कौशीतकी कहा गया है।

यजुर्वेदमें कुल १०१ शाखाएं हैं। इनमें ८६ ब्रह्मसम्प्रदायकी मानी गयी हैं। इनको कृष्णयजुर्वेद कहा गया है। शेष माध्यंदिनी

कण्व इत्यादिकी १५ शाखाएं आदित्य-सम्प्रदायकी हैं। इन १५ शाखाओंका नाम शुक्ल यजुर्वेद है। विद्वानोंने यज्ञानुष्ठानके सम्बन्धमें शुक्लयजुवदको ही माना है, क्योंकि वही विशद और व्यवस्थित है। कृष्णयजुर्वेदसे अनेक विषयोंमें शंका और मतभेदही उत्पन्न होता है। सायणाचार्यने भी यही मत प्रकट किया ह।

सामवेदमें १००० शाखाएं हैं। इसमें दो भाग हैं। (१) राणायनीय साम्नाय और (२) कौथुमीय साम्नाय। इनमें राणायनीय साम्नाय ब्रह्मसम्प्रदायमें परिगणित है। कौथुमीय आदित्य सम्प्रदायमें है। इनमें भी अनेक शाखाएं आज नष्टप्राय हो गयी हैं!

अथर्वणवेदमें भी यही बात है! इस वेदमें कुल ९ शाखाएं हैं। इनमें भी (१) पिप्पलादि और (२) शौनकीय—इस प्रकारसे २ साम्नाय हैं। इनमें शौनकीय साम्नाय आदित्य सम्प्रदायमें परिगणित है। पिप्पलादि साम्नायकी गिनती ब्रह्मसम्प्रदायमें है।

इससे आदित्य सम्प्रदायका भारतमें अनादिकालसे अस्तित्व निर्विवाद रूपमें सिद्ध हो जाता है।

शुक्ल या कृष्ण

स्वतंत्र वेद, स्वतंत्र सम्प्रदाय, स्वतंत्र आश्रम बनाकर यज्ञविधियोंका संस्कार करनेमें प्रवृत्त हो गये, याज्ञवल्क्य सूर्यनारायणसे वेद ज्ञान प्राप्त करनेके पश्चात्। अब उनका आश्रम और अनुयायी--दल विश्वविख्यात यजुर्वेदाचार्य वैशंपायनसे कहीं अधिक यशस्वी और गौरवान्वित होने लगा था। अनेक जगहसे पूर्वपरिपाटी और अपूर्ण पद्धतिको लेकर चलनेवाले गुरुवर्य इसी लिये याज्ञवल्क्यसे स्पर्धा रखने लगे। इनमें सबसे बड़ी स्पर्धा पूर्व गुरुवर्य वैशम्पायनसे होने लगी। एक दिन वैशम्पायनने अकेलेही संसार भरके समकालीन विद्वानोंको नगण्य माना था, पर आज उनका वह मान नहीं रह गया था। जिस शिष्यको उन्होंने प्रगल्भ और धृष्ट मानकर गर्मीसे तिरस्कृत कर दिया था, वह शिष्य सूर्यनारायणसे प्राप्त शुक्ल यजुर्वेदका महत्व स्थापित करता हुआ, अद्भुत पाण्डित्य प्रदर्शित करता हुआ सर्वलोकसमादृत होता चला जा रहा था।

फल यह हुआ कि शुक्ल यजुर्वेद या कृष्ण यजुर्वेदके नामपर विद्वानोंमें विवाद चलने लगा। और इन विवादोंमें सूर्याशिष्य याज्ञवल्क्यकी विजय होती चली गयी तो विवादने वैशम्पायन याज्ञवल्क्य संघर्षात्मक रूप लेलिया। दोनोंको पाण्डित्यका पूरा अभिमान था। इसमें पहली भिडन्त जनक महाराजके दरबारमें, यज्ञके समय हुई थी, और यहींसे याज्ञवल्क्य यज्ञोंके अध्वर्यु होने लगे।

तत्कालीन विदेहकुलके अन्तिम जनकने एक महान यज्ञ आयोजित करके पाण्डित्य एवं यज्ञ सम्बन्धी ज्ञानकी कसौटी कर लेनेका पहला अवसर याज्ञवल्क्यको दे दिया। उस समयतक याज्ञवल्क्य प्रसिद्ध

होकर इतने समादृत नहीं हो पाये थे जितने वैशम्पायन आदि थे। फलतः यज्ञमें याज्ञवल्क्य केवल दर्शक रूपसे सम्मिलित हुए थे।

ऋगवेदके महानाचार्य पैल, होता हुए थे। यजुर्वेदके प्रधान आचार्य वैशम्पायन अध्वर्यु बनाये गये थे। सामवेदके श्रेष्ठ आचार्य जैमिनी उद्गाता पदाभिषिक्त होकर काम करने लगे थे। उपऋत्विज आदि पदोंपर इन आचार्योंके शिष्यही विराजमान थे।

यज्ञका अध्वर्यु होना कोई साधारण बात नहीं होती। अध्वर्युही बुराई भलाईके लिये उत्तरदायी होता है। यज्ञमें विघ्न पड़े तो अध्वर्युकोही प्रायश्चित्त करके पुनः कार्यको संभालना पडता है। सब यज्ञकार्य यथाशास्त्र होनेपर ही यज्ञ पूर्ण एवं सफल होता है। संयोगवश जनकके इस यज्ञमें विघ्न उपस्थित होगया। विघ्न उपस्थित होनेपर ऐसे प्रायश्चितका प्रश्न उपास्थित हुआ जिसके पश्चात यज्ञकार्य परम सुखद होजाय। वैशम्पायनको व्यतिरेकका प्रायश्चित करना पडा, किन्तु वह सफल नहीं हुआ। फलतः यज्ञमें वैगुण्य उद्भवित होकर कार्यके व्यर्थ होनेकी सम्भावना दृष्टिगोचर होने लगी। जनक भारी द्विविधामें पड़ गये और वैशम्पायन हतप्रभ होगये। इसी कर्मधर्मसंयोगसे जनकको विदित हुआ कि सूर्यनारायणके कृपापात्र शुक्ल—यजुर्वेदके महान आचार्य याज्ञवल्क्य भी मण्डपमें विद्यमान हैं। जनक उनकी सुख्याति सुन चुके थे। अतः प्रेमके साथ वे याज्ञवल्क्यके आसनके निकट पहुंचकर उनसे मिल लिये! और इसी समय उन्होंने बिगडते हुए कामको बना देनेकी याचना की। गुरु वैशम्पायन दैन्यभावसे याज्ञवल्क्यकी ओर तथा राजाजनककी ओर देखने लगे। अन्ततः

याज्ञवल्क्यने राजाकी प्रार्थना स्वीकारके शुक्ल यजुर्वेदीय विधिसे शास्त्रानुसार विधिपूर्वक पूर्ण प्रायश्चितकार्य पूर्ण करा दिया। महान चमत्कार हुआ यज्ञ फिर विघ्नरहित होकर साद्गुण्यपर आगया।

इस प्रकारसे चमत्कार पूर्ण विजय मिलनेपर यज्ञमंडपमें याज्ञवल्क्यका जयजयकार गूंजने लगा।

दक्षिणाके दिन फिर संघर्ष हुआ। याज्ञवल्क्यके सत्कार्यसेही प्रायश्चित्त परिपूर्णताको पहुंचा था और तभी यज्ञानुष्ठान अपने प्रकृत स्वरूपमें हो पाया था। फलतः अध्वर्युकी दक्षिणाके वही अधिकारी होगये थे उधर वैशम्पायन यज्ञके आरम्भकालसे अध्वर्यु थे और विघ्नका प्रायश्चित्त भी उनको ही करना पड़ा था। इस लिये अपनी सम्पूर्ण दक्षिणाके वही एकमात्र दावेदार थे। परमोदार राजाजनककी दक्षिणानिधिकी पुष्कलताका प्रश्न जितना महत्व ले रहा था, उससे अधिक महत्व गुरुचेलेकी भिडन्तका था। अन्तमें शुक्लयजुर्वेदीय याज्ञवल्क्य, विजयी होकर भी, विवाद शांति निमित्त आधी दक्षिणा स्वीकार करके चले आये।

———

विजय दुंदुभी बजने लगी

इस चमत्कार और यज्ञ साफल्योपरान्त देश विदेशोंमें, शुक्ल-यजुर्वेद और याज्ञवल्क्यकी विजय दुंदुभी बजने लगी। अपार श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक राजामहाराजागण और विद्वान ऋषिमुनि उनसे आ-आकर मिलने लगे—तथा धर्मचर्चा करने लगे। आदित्यके इस प्यारे शिष्यकी सुकृतियोंने आदित्य, आदित्य-ब्रह्मवेद-सम्प्रदाय और यज्ञोंको नवीन रूप देकर सर्वत्र पुजवा दिया। परमश्रद्धालु बने हुए राजाजनकने गंगाजीके तीर-पर फिर भारी अश्वमेध यज्ञका आयोजन किया, और इसमें याज्ञवल्क्यकोही अध्वर्यु बनाकर सम्मानित किया। और भी चमत्कार यह हुआ कि अथसे इतितक यह महायज्ञ सर्वविधिसे निर्विघ्नही सम्पन्न हो गया। यहांसे जनक महाराज शुक्लयजुर्वेदीय बनकर याज्ञवल्क्यके अनुयायी होगये।

अब याज्ञवल्क्यकी कीर्तिपताका सर्वत्र फहराने लगी। वारम्वार उन्हींको अध्वर्यु बनाकर यज्ञोंपर यज्ञ होने लगे। गोदावरी तटपर पुण्यस्थानमें, नर्मदा तटपर मित्रविंद स्थानमें तथा श्रीकांचीक्षेत्रमेंभी सफल यज्ञ होगये। (आन्हिकचंद्रिका देखिये) इस प्रकार विजयोंकी परम्परा याज्ञवल्क्यके आगेपीछे करबद्ध होकर फिरने लगी।

सुख्याति चान्द्रिकाने सर्वव्यापकता दिखलाई तो महाराजा परीक्षितके सुपुत्र सम्राट जनमेजयभी याज्ञवल्क्यके भक्तों और अनुरक्तोंमें सम्मिलित होगये। अलौकिक कर्तव्यपरायणता, अगाध ज्ञान और अप्रतिम तेजोराशिसे सुख मानकर जनमेजय सम्राटनेभी शुक्लयजुर्वेदको स्वीकार कर लिया। उन्होंने राजकुमार शतानीकको याज्ञवल्क्यका शिष्य बनाकर शुक्लयजुर्वेदही पढाना उचित समझा। जनमेजय सम्राट स्वयम् भी महाविद्वान, धर्मज्ञ और परम सदाचारी थे। इतनेही वे पराक्रमी और शूरशिरोमणि भी थे। राजापरीक्षितका स्वर्गवास तक्षक सर्पदंशसे

हुआ था। अपने पिताकी मृत्युका बदला लेनेके लिये जनमेजयने सर्पसत्र-यज्ञ करके महान यश उपार्जित कर लिया था। संसारसे, यज्ञपूर्वक, सर्प जातिका नामनिशान मिटानेमें जो साफल्य उन्हें मिला था, उसने सम्राटकी धाक अन्य सब नृपतियोंपर बैठा दी थी—और वे महाराजा-श्रयमें मांडलीक नृपतित्व स्वीकार कर चुके थे। इतने भारी सम्राटका अपनी शिष्य परम्परासे निकलकर याज्ञवल्क्यकी मण्डलीमें चले जाना वैशम्पायनको बुरीतरह अखरने लगा। वे परोक्षमें नीति एवं अनीतिसे याज्ञवल्क्यको सम्राटके घरसे हटानेका प्रयत्न करने लगे। पर सम्राट सम्पूर्णभावेन याज्ञवल्क्यकी शरणमें पहुंच चुके थे। फलतः वैशम्पायनकी शिकायतोंपर कान न देते हुए जब सम्राट जनमेजयने पौर्णमास यज्ञ आयोजित कर डाला और वैशम्पायनको यज्ञमें पूछातक नहीं तो वे बहुत बिगड उठे। यज्ञमण्डपमें, पैर पटकते हुए, स्वयम् वैशम्पायन पधारे और सम्राट तथा याज्ञवल्क्यको बुराभला कहकर शाप देते हुए उलटेपांव लौट गये। (मत्स्यपुराण अ. ५०) यज्ञमंडपमें मात्सर्य और रोषके इस प्रदर्शनके समय याज्ञवल्क्य परम शांत बने रहे थे। अतः महाराज जनमेजयपर उनका इतना प्रभाव पडा कि इस काण्डके पश्चात अपने कुलमान्य वैशम्पायनका नाम लेना भी छोड़ दिया। इस प्रकारसे संसारमें वैशम्पायन समर्थित कृष्णयजुर्वेद पक्षमें अमावास्याकी अंधियारी छागयी और याज्ञवल्क्य प्रचारित शुक्ल यजुर्वेदविधियां सोलहकलापूर्ण चन्द्रमाकी भांति पौर्णिमाका दृश्य दिखाने लगीं।

गुरु (वैशम्पायन) गुड़ ही रह गये।
चेला (याज्ञवल्क्य) साखर बन गये।

वैशम्पायनके आश्रममें मक्खियां भिनकने लगीं और शुक्ल यजुर्वेद प्रवर्तक आदित्य भगवानके प्यारे शिष्य याज्ञवल्क्यके शिरपर चंवर डुलायेजाने लगा।

संघर्षपर संघर्ष

प्रतिस्पर्धाने पूर्णरूपेण रागद्वेषात्मक रूप लेलिया. तो वैशंपायन एवं उनके शिष्य समुदायकी सम्पूर्ण शक्तियोंका प्रयोग याज्ञवल्क्य तथा उनकी शुक्ल यजुर्वेद यज्ञविधियोंके विरुद्ध प्रचार कार्यमें होने लगा। किन्तु दैवी अनुकम्पा याज्ञवल्क्यका साथ दे रही थी। फलतः जितना अधिक प्रचार और रोषप्रकाश याज्ञवल्क्यके प्रति होता चला जाता था, उतनीही अधिक उनकी सुख्याति तथा लोकप्रियता बढती चली जाती थी। वैशम्पायन दलके यज्ञ निर्विघ्न और सफल न होते, उधर याज्ञ-वल्क्यके यज्ञ निर्विघ्न एवं सफल होते चले जाते थे। राजराजेश्वर जनमेजयके दरबारमें प्राप्त प्रभावको नष्ट कर डालनेका प्रयत्न जितनाही वैशम्पायनका पक्ष करता था, उतनाही महाराज वैशम्पायनसे खिंचते हुए याज्ञवल्क्यकी ओर आकृष्ट होते चले जाते थे। यह घटनावलि अन्ततः अश्वमेधयज्ञके रूपमें विकसित होगयी। राजराजेश्वर जनमे-जयने याज्ञवल्क्यके तत्वावधानमें ही इस यज्ञकोभी करना निश्चित किया। इसने वैशम्पायनको पराभवका अप्रीतिकर पुरस्कार दे डाला तो वह आगबगूला हो उठे।

आर्य संस्कृति और वैदिक विधि यज्ञ मूलक है। यज्ञोंमें अश्वमेध यज्ञ सर्वाधिक महत्वका होता है। विश्वविजयी एवं चक्रवर्ती राजराजेश्वरोंकोही अश्वमेध करनेका अधिकार होता है; न तो कोई माण्डलीक महाराज इस यज्ञको करनेमें समर्थ होता है और न विद्वन्मण्डली उसको यज्ञ करनेकी अनुमति एवं सहयोगही देती है। यह महान यज्ञ राष्ट्रीय

वैभवका सर्वोत्कृष्ट रूपमें प्रदर्शन ही होता है और साथही अश्रुतपूर्व राष्ट्रवैभव प्राप्तिपर देवगणके प्रति श्रद्धासमन्वित कृतज्ञतापूर्वक सुमनांजलि और हविष्याहुति अर्पित की जाती है । अश्वमेध यज्ञमें मुख्य तथा सहायक कुण्डों, चक्रों और मण्डपोंका निर्माणही देशकी कलाकौशल्य की परम उत्कृष्ट भेटें चाहता है। फिर मित्र, सहायक और माण्डलीक नृपति गणके लिये जो भवन तथा सभास्थल बनाये जाते हैं उनपरभी अमित धनराशिका व्ययभार उठाना पडता है । आहुतियों आदिके अतिरिक्त, आगत सज्जनोंके स्वागतसत्कारमें लाखों रुपयोंको पानीकी तरह बहाना पडता है। यज्ञके साथ राजसीय और राष्ट्रीय वैभवका भी खासा प्रदर्शन हो जाया करता है। फिर दान धर्मकी तो बातही निराली है। इसी पुनीत अवसरपर दान धर्म मुक्त हस्त होकर न किया जाय तो फिर कौनसा अवसर आयगा। सारांश यह कि अश्वमेध यज्ञ सर्वैश्वर्य सम्पन्नताका प्रदर्शन और निदर्शन हुआ करता था । राजराजेश्वर जनमेजयका अश्वमेध यज्ञ भी अश्रुतपूर्व वैभव विपुलता लिये हुए था।

मुख्य मंडप सुविस्तृत रूपमें कलापूर्ण शास्त्रीय विधिसे निर्मित होता है। यह अग्निष्टोम अथवा सोम यज्ञ विधिके अनुसार अनेक उपमण्डपोंमें विभाजित होकर ध्वजापताका और वंदनवारोंसे सजाया जाता है। प्राचीन शाला, सद, हविर्धान, आग्नीध्रीय और मार्जालीये—इस प्रकारसे पांच मण्डपोंसहित होता है। प्राचीन विभागमें (१) आहवनीय (२) गार्हपत्य और (३) दक्षिणाग्नि नामक तीन वैदिक श्रौताग्नियोंकी स्थापना होती है। इसी प्राचीन शालाके समीप पूर्वमें सदोमंडपनिर्मित होता है जिसमें यज्ञपुरोहित तथा उनसे मेल रखनेवाली प्रतिष्ठित मण्डलीकी

व्यवस्था होती है। इसके पूर्वमें हविर्धान मण्डप रहता है, जहां यज्ञसे सम्बन्ध रखनेवाली समस्त सामग्री संग्रहीत रहती है। इसीके आगे एक और वेदी बनायी जाती है जिसको सौमिक या महावेदी भी कहते हैं। इसी वेदीके निकट पूर्वदिशामें यज्ञ पशुके लिये एक बृहत् स्तम्भ खडा किया जाता है। यह स्तूप या स्तम्भ पलास, खैर या बिल्व वृक्षके काष्ठका सुकुशलता युक्त रहा करता है। अश्वमेधमें इस प्रकारकी रचनाओंके मध्यमें २१ स्तूप या स्तम्भ रहते हैं। महावेदीकी उत्तर दिशामें आग्नीध्रीय, दक्षिण दिशामें मार्जालीय मण्डप और भी होते हैं। इन्हींके आसपास यज्ञपात्रोंकी सुरक्षाके लिये एक और मण्डप होता है। अश्वमेधके प्रथम दिवस दीक्षाविधि तथा ऋत्विजवरण हो होचुकने पर राजेश्वर सुवर्णकण्ठमाल पहनकर होम पर बैठता है। होम पूर्ण होनेपर यह सुवर्ण कण्ठमाल अध्वर्युकोही अर्पित कर दी जाती है। इसी प्रकारसे अनेक विधियां अश्वमेध महायज्ञमें सम्पन्न की जाती हैं। फिर घोड़ा छोड़ा जाता है। यह घोड़ा पृथ्वीके प्रायः सभी राज्यों और राष्ट्रोंमें निर्बाधरूपसे फिरता हुआ घर लौट आना चाहिये। तब ही मुख्य यज्ञ होता है। इतने दिनतक अनेक होम इत्यादि होते रहते हैं। यदि कहीं किसी प्रतापी राजाने घोड़ेको मार्ग न देकर शक्तिस्पर्धा करना उचित समझ लिया तो फिर उससे संग्राम करके विजयप्राप्तिके पश्चात घोड़ेको आगे बढाया जाता है। इस प्रकारसे यह महायज्ञ अद्वितीय प्रकारका ही होता है। और इसको विश्वविजयी राजेश्वर ही किया करते हैं। सम्पूर्ण यज्ञ महीनोंका नहीं वर्षोंका खेलभी बन जाता है। सामान्य रूपसे १ वर्ष २७ दिनमें यह यज्ञ पूरा हुआ करता है।

शतपथ ब्राह्मणमें इस यज्ञका फल वर्णन करते हुए लिखा है—

तरति सर्वपाप्मानं तरति ब्रह्महत्यां यो अश्वमेधेन यजते।
सर्वान्हिवै कामानाप्नोति सर्वाव्यष्टीर्व्यऽश्नुते यो अश्वमेधेन यजते॥

अश्वमेध करनेवाला सब पापोंसे तर जाता है—ब्रह्महत्या महापातक से भी वह तर जाता है जो अश्वमेध यज्ञ करता है। इसप्रकारका यज्ञ करनेवाला लोकोंका अधिपति होता है और उसकी सब कामनाएं पूर्ण होजाती हैं।

"मेरे आश्रमसेही निर्वासित मेरा पूर्व शिष्य इतने भारी यज्ञका ब्रह्मा बनकर बैठता है, और मुझे कोई पूछता भी नहीं है?" यह विचारकर परमकोपाविष्ट वैशम्पायनने यज्ञका बायकाट घोषित कर दिया। शुक्ल-यजुर्वेद और वाजसनेयी वालोंकी प्रधानतामें होनेवाले इस महायज्ञमें अन्य किसी शाखाके ब्राह्मण विद्वानको कोई भाग न लेना चाहिये, यह वैशम्पा-यनने विघोषित कर दिया। आगेके लिये भी निश्चित हुआ कि जो राजा महाराजा याज्ञवल्क्यको मानकर इस विधिसे यज्ञ करायेंगे उन सबके यज्ञोंका भी बायकाट किया जायगा। इस घोषणासे याज्ञवल्क्य विचलित न हुए। राजराजेश्वर जनमेजय भी सुदृढ रहे और आदिसे अन्त तक अश्वमेध यज्ञ भी सम्पूर्ण सफलतासे हो गया। [मत्स्य पुराण ५०] याज्ञवल्क्य की विजय दुंदुभिसे आकाश गूंजने लगा। राजाने इसके बाद एक और भी ऐसाही यज्ञ कर दिखाया। इस तरह वैशम्पायनके प्रति अनास्थाका भाव और भी गहरा होता चला गया। परिणाम यह हुआ कि राजराजेश्वर जनमेजयके विरोधमें गुप्तरूपेण अराजभक्तिका प्रचार करनेके लिये वैशम्पायनके कई शिष्य निकल पड़े। इनमें स्यामायनी, आरुणी और आलंबी मुख्य थे।

———

जनमेजयका राज त्यागना

वैशम्पायनके शिष्योंने और उनके अन्य अनुयायियोंने जनमेजय महाराजके विरुद्ध जो विषाक्त प्रचार किया उससे देशमें अशान्त वातावरण पैदा हो गया। राजराजेश्वरको भी इन हरकतोंसे बड़ी ग्लानि हुई। पर अन्तमें उन्होंने असन्तोष और ब्राह्मणोंकी अप्रीतिको देखते हुए राजत्याग कर बनवासी होना निश्चित कर लिया। उन्होंने अपने कुलकी मर्यादा का ध्यान रखते हुए वैशम्पायन पक्षके ब्राह्मणोंका विरोधी बनकर दण्ड-प्रहार करना उचित नहीं समझा। राजराजेश्वरको सिंहासन त्यागनेका अवसर उपस्थित करा दिया, इसपर निश्चयही वैशम्पायनके पक्षको परम संतोष हुआ होगा। पर दूसरे दिनही यह सन्तोष भी महान असन्तोष-जनक निकला। जनमेजयके पुत्र शतानीक राजसिंहासनपर विराजे तो तिलकोत्सव कालसेही उन्होंने अपने पिताकी स्वीकृत शुक्ल यजुर्वेद विधियोंकोही मान्य रखा। और याज्ञवल्क्यतो शतानीकके गुरुवर्य ही थे। इसतरह जीती हुई बाजी वैशम्पायनको पुनः हार जानी पड़ी। उधर जैसेजैसे षड्यंत्र और बहिष्कारकी बात फैलती गयी, जैसेजैसे लोगोंको यह विदित होता गया कि राजराजेश्वर जनमेजयके समान महान धार्मिक नरेशके वैराग्यका कारण वैशम्पायनकी रागद्वेषात्मक बुद्धि और कुप्रवृत्ति भी है, वैसे ही क्षात्रिय नृपतिगण वैशम्पायनके कैम्पको छोड़ छोड़कर याज्ञवल्क्यकी शरणमें पहुंचते चले गये। याज्ञवल्क्यके वाजसनेयी पक्ष और क्षात्रियोंसे वैशम्पायनका पूरा बिगाड़ हो गया।

ब्रह्मज्ञान यज्ञमें विजय

जनमेजयके स्वर्गवासोपरान्त रागद्वेषात्मक प्रभाव थोड़ा ठण्डा पड़ जाने पर अन्तिम जनक राजाने ब्रह्मज्ञान महायज्ञका आयोजन कर डाला। सभी विद्वानोंको आमंत्रित किया गया था। फिर एक दिन विद्वन्मण्डलमें विराजमान राजर्षि जनकने विघोषित किया....

"विद्वानों, ब्रह्मवेत्ताओं और तपस्वी ऋषि वरो! १००० सद्यो व्याही हुई बछड़े बछड़ियों सहित गौएं मैंने सोनेसे सिंग मढवाकर रख छोड़ी हैं, आप सबमें जो ब्राह्मण शिरोमणि हो वही इनको ले जाय।" (बृहदारण्यक अ. ३ ब्रा. १)

राजर्षि जनक हाथ जोड़कर खड़े रहे, पर कोई भी सर्व श्रेष्ठत्वका दावा करनेको खड़ा नहीं हुआ। सब एक दूसरेका मुख ताकने लगे। अनेक प्रकाण्ड ज्ञानवान विद्यमान थे, पर सर्वश्रेष्ठत्व तो ज्ञानस्पर्धाके पश्चात् ही प्रतिपादित हो सकेगा यही सोचकर किसीने अग्रसर होनेका साहस नहीं किया। इस महाब्रह्मज्ञान यज्ञमें याज्ञवल्क्य भी पधारे हुए थे। सबके देखते देखते याज्ञवल्क्य खड़े हो गये। उन्होंने अपने शिष्य सामश्रवासे कहा:—

"सामश्रवा! जाओ इन गौओंको अपने आश्रममें हांक लेजाओ!"

अबतक जो विद्वान किं कर्तव्यविमूढ से हो रहे थे, याज्ञवल्क्यकी घोषणोपरान्त उनको होश आया तो सब बिगड़ने लगे। यहां तक आँय-बाँय-शाँय हुई कि मारपीट की नौबत आजानेका भय उपस्थित होगया। इसपर राजर्षि जनकने विनयपूर्वक कहा कि शीलस्नेह-सम्पन्न

विद्वानोंकी यह रीति नहीं है। आज यहां यह बात सिद्ध होजानी चाहिये कि आप सबमें कौन ऋषि सर्वश्रेष्ठ है। राजर्षिकी इस विनय-वाणीने शान्तिपूर्ण वातावरण पैदा कर दिया। पर शास्त्रार्थके लिये ऋषिमंडली दो दलोंमें विभाजित होकर जम गयी।

एक ओर अकेले बैठे थे सूर्यनारायणके प्यारे शिष्य याज्ञवल्क्य। दूसरी ओर अन्य सब ब्रह्मवेता और ऋषिमुनि गण जमे हुए थे।

इस संघर्षमें परम विदुषी नारियां भी सम्मिलित हुई थीं। आश्वलायन शाखाके प्रवक्त शाकल्य, जनकके कुलगुरु पुरोहित अश्वल, उद्दालक आरुणि, गार्गी और वाचकनी इनमें मुख्य थे।

सर्व प्रथम जनकराज पुरोहित अश्वल मृत्यु, मुक्ति, हवन, आहुति तथा अन्य कई याज्ञिक विषयों पर चर्चा छेड़कर परास्त होगये।

फिर जरतिकारव आर्तभागसे वादविवाद हुआ। यह भी ग्रहोंके सम्बंधमें कई प्रश्न करनेके पश्चात मृत्युके उपरान्त आत्माकी गतिके सम्बन्धमें प्रश्नोत्तर करते हुए पराभूत होगये।

फिर वैशम्पायनके शिष्य भुज्यू उठे। इन्होंने प्रश्न उठाया कि—"क्योंजी वह परीक्षित राजाका सपूत जनमेजयराजा मरकर कहां चला गया है?" याज्ञवल्क्यने कड़ककर उत्तर दिया कि वह उसी लोकको प्राप्त होगया है जहां अश्वमेध करनेवाले सफल राजराजेश्वर जाया करते हैं। इस एकही उत्तरसे वैशम्पायनके शिष्यकी बोलती बंद होगयी, आगे बढकर और कोई प्रश्नोत्तर न करके उन्हें स्थान ग्रहण करनाही उचित समझा।

चचक्रके पुत्र उषस्त्यने आत्माके सम्बंधमें कई प्रश्न किये । यह भी थोड़ेमेंही सन्तोष मान कर एक ओर हट गये ।

इनके बाद कहोलभी दोचार बातोंमें परास्त होकर चलते बने ।

जनकके राजपुरोहित परास्त

राजकुलके हौत्रकर्म करनेवाले अश्वल ऋषिने प्रश्न किया....

(क) **याज्ञवल्क्येति होवाच यदिदं सर्वं मृत्युनाप्तं सर्वंमृत्युना-भिपन्नं केन यजमानो मृत्योराप्तिमतिमुच्यत इति होत्र र्त्विजाग्निना वाचा वाग्वै यज्ञस्य होता तद्येयं वाक्सोऽयमग्निः स होता स मुक्तिः सातिमुक्ति ।**

अच्छा याज्ञवल्क्यबताओ तो कि मृत्युके गर्तमें फंसे हुए मौतसे फिरे हुए इस जगतमें यजमानको कौन मौतसे बचानेवाला है— ऋत्विज, अग्नि अथवा होता ?

याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया—आत्मयज्ञ करनेसे, आत्मैक भावनासे सर्वात्मा मुक्ति प्राप्त करता है । इस आत्मयज्ञमें वागेंद्रिय होता, वाणीका देवता अग्नि और कूटस्थचैतन्य यजमान होता है । तीनोंकी ऐक्य भावनासे बही मृत्युव्याप्त जगतसे मुक्ति पाता है । वैसे निर्लिप्त आत्मा तो स्वाभाविक रूपमेंही मुक्त रहता है ।

(ख) **याज्ञवल्क्येति होवाच यदिदं सर्वमहोरात्राभ्यामाप्तं सर्वमहोरात्राभ्यामाभिपन्नं केन यजमानोऽरात्रयोराप्तिमति मुच्यत इत्यध्वर्युणर्त्विजा चक्षुषादित्येन चक्षुर्वै यज्ञस्या-ध्वर्युस्तद्यदिदं चक्षुःसोऽसावादित्यः सोऽध्वर्युः स मुक्तिः साति मुक्तिः ।**

अच्छा याज्ञवल्क्य बताओ तो इस रातदिनके चक्करमें फंसे हुए जगतमेंसे यजमानको कौन मुक्ति दिलाता है। वह कौनसे अध्वर्यु है ?

चक्षुरिन्द्रिय (आंख) यह ज्ञान यज्ञमें अध्वर्युः है, और साक्षाद् सूर्यदेवताकी ही प्रतीक है। इस सूर्यका अधिष्ठान जो कूटस्थ चेतन है वह तीनोंकी एकतासे स्वयं (सूर्यात्माजगतस्थश्च) जगतात्मा सूर्य होकर मुक्ति पाता है।

(ग) याज्ञवल्क्येति होवाच यदिदं सर्व पूर्वपक्षापरपक्षाभ्यामाप्तं सर्व पूर्वपक्षापरपक्षाभ्यामभिपन्नं केन यजमानः पूर्वपक्षापरपक्षयोराप्तियति मुच्यत इत्युद्गा ऋत्विजा वायुना प्राणेन प्राणो वै यज्ञस्योद्गाता तद्योऽयं प्राणः स वायु स उद्गाता स मुक्तिः साति मुक्तिः।

पूर्वपक्ष अपरपक्षके फेरमें पड़े हुए इस जगतमेंसे यजमानको कौन छुड़ाकर मुक्ति दिलाता है, बताओ तो सही याज्ञवल्क्य ?

प्राणही ऋत्विज उद्गाता और अग्निस्वरूप हो कर मुक्ति पाता है।

(घ) याज्ञवल्क्येति होवाच यदिदमन्तारिक्षमनारम्बणमिव केनाक्रमेण यजमानो स्वर्गलोकमाक्रमत इति ब्रह्मणर्त्विजा मनसा चन्द्रेण मनो वै यज्ञस्यब्रह्मा तद्यदिदं मनः सोऽसौ चन्द्रः स ब्रह्मा स मुक्तिः सातिमुक्ति रित्यति मोक्षा अथ सम्पदः।

अच्छा याज्ञवल्क्य बताओ तो इस आधार अवलम्ब रहित तने हुए जगतवितानमेंसे यजमानको कौन किस रीतिसे स्वर्गलोकतक निकाल ले जाता है।

ब्रह्मयज्ञमें मनही ब्रह्मा होता है। मनही चन्द्र-अधिदेवता है। वह ब्रह्मऋत्विज होकर इस वितानसे स्वर्गको निकल जाता है। पार होनेपर मुक्ति होती है और अतिमुक्तिसे मोक्ष।

(ङ) याज्ञवल्क्येति होवाच कतिभिरयमद्यर्भिर्होतास्मिन्यज्ञे करिष्यतीत तिस्टभिरिति कतमास्तास्तिस्त इति पुरोनुवाक्या च याज्या च शस्यैव तृतीयत किं ताभिर्यजतीत यत्किञ्चेदं प्राणभृदिति।

आत्मयज्ञमें अध्वर्यु कितनी आहुतियां देता है और उनका फल क्या है। बताओ तो सही?

आत्मयज्ञमें अध्वर्यु तीन आहुतियां देता है जिनको (१) उज्वलंति, (२) अतिनेदोति और (३) अतिशेरंति कहा जाता है। इनसे क्रमपूर्वक (१) देवलोक (२) पितृलोक और (३) मनुष्यलोककी प्राप्ति होती है।

इस प्रकारके और दोतीन प्रश्नोंके पश्चात् अश्वलने शांत होकर आसन ग्रहण कर लिया।

जारत्कारू आर्तभागका पराजय

अश्वलके आसन ग्रहण पूर्वक मौनावलंबन करने पर जारत्कारू ऋषिके पुत्र आर्तभागने प्रश्नोंकी बौछार शुरु की। इनके भी सब प्रश्नोंका उत्तर याज्ञवल्क्यने इसी चमत्कार भरित रूपमें दिया कि किसीको दोष दर्शन पूर्वक शास्त्रार्थ छेड़नेका भी अवसर नहीं मिला। इनमें कई प्रश्नोंको यहा दिया जाता है।

याजवल्क्येति होवाच कतिग्रहाः कत्यति ग्रहा इति।
अष्टौ ग्रहा अष्टावतिग्रहाः इति ये
तेऽष्टौ ग्रहा अष्टावतिग्रहाः कतमे इति ।

आत्मयज्ञकी ज्ञानाग्निमें होम करते समय कितने गृह और कितने अतिग्रह माने गये हैं ?

याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया कि आठ ग्रह हैं और आठही अतिग्रह हैं। १ प्राण, २ वाणी, ३ जिह्वा, ४ चक्षु, ५ मन, ६ कान, ७ हाथ, ८ त्वचा ग्रह माने गये हैं । और १ प्राणका उपग्रह अपान, २ जिह्वाका रस, ३ वागेन्द्रियका भाषण, ४ चक्षुका रूप, ५ मन का काम, ६ कानका शब्द, ७ त्वचाका स्पर्श, ८ हाथका क्रिया । आठों ग्रह, आठों अतिग्रहोंसे सर्व काल संयुक्त ही रहते हैं। इसका अर्थ यह है-ज्ञानयज्ञमें आत्मा अग्निका स्थान लेता है । वह इन इन्द्रियोंके कार्योंसे विलग और निर्लिप्त ही बना रहता है। ग्रह और अतिग्रह कितने यह नियमसे देखा जा सकता है।

याज्ञवल्क्येति होवाच यदिदं सर्वं मृत्योरन्नं का स्वित्सा देवता
यस्य मृत्युरन्न मित्याग्निर्वै मृत्युः सोपामिमन्न पुनर्मृत्युं जयति ।

अच्छा याज्ञवल्क्य बताओ तो सही कि यदि यह सारा संसार मौतका भोजन मात्र है, तो मौत किसका भोजन है।

आत्म स्वरूपसे विस्मृतिही मृत्यु है। मोहमें फंसे हुए जगतके लिये मौत सर्व भक्षक है जो निःसंशय ब्रह्मस्वरूप है। उसीका भोजन मौतभी है।

याज्ञवल्क्येति होवाच यत्रायं पुरुषो म्रियत उदस्मात्प्राणाः क्रामन्त्या हो ३ नेतिनेति होवाच याज्ञवल्क्योऽत्रैव समवनीयन्ते स उच्छ्वयत्याध्मायत्याध्मातो मृतः शेते।

अच्छा याज्ञवल्क्य यह बताइये कि जब कोई पुरुष मरता है तब वाणी अग्निमें, प्राण आदित्यमें पहुंचते हैं। अर्थात् प्राण, नेत्र, मन, श्रोत्रादि, अन्तःकरण, केश, लोहु तथा रेत क्रमशः वायु, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, आकाश, औषधि और उदकमें मिल जाते हैं। फिर जीव कहाँ चला जाता है? जीव ब्रह्ममें ब्रह्मरूप ही होजाता है।

क्या इसबातको स्पष्ट बता सकोगे?

हाँ, हाँ—पर इसके लिये एकान्तवासपूर्वक चिन्तनकी आवश्यकता पड़ेगी।

इसपर दोनोंने एकान्तवासपूर्वक वार्तालाप और चिन्तन किया। आत्मज्ञानसे मोक्ष, पुण्य कार्योंसे पुण्यलोक और पापकर्मसे पाप-लोककी प्राप्ति प्रतिपादित और सिद्ध कर दिखाने पर आर्तभागको आत्मज्ञान प्राप्त होगया। इसपर वह भी विवादसे हट गये।

भुज्यूः लाह्यायनीका शमन—

भुज्युः ऋषिने [जो वैशम्पायनके शिष्य थे] पूछा,

मद्रेषु चरकाः पर्यव्रजाम ते पतञ्चलस्य काप्यस्य गृहानैम तस्यासीद् दुहितागन्धर्वगृहीता तमपृच्छाम कोऽसीति सोऽब्रवीत्सुधन्वाङ्गिरस इति तं यदा लोकानामन्तान पृच्छामाथैनमब्रूम क्व पारिक्षिता अभवन्निति क्व पारिक्षिता अभवन् स त्वा पृच्छामि याज्ञवल्क्य क्व पारिक्षिता अभवन्निति

मद्र प्रदेशमें--पर्यटन--अध्ययन निमितमें एक कपिगोत्रवाले भ्रमण-पतंचल ब्राह्मणके घर जा पहुंचा था। उसकी एक भार्या गन्धर्वगृहीता थी। हमने उससे पूछा था कि तू कौन है, तेरा क्या नाम है, इत्यादि। उसने बताया था कि मैं अंगिरस गोत्रवाला सुधन्वा गन्धर्व हूँ। याज्ञवल्क्य! क्या तुम बता सकते हो कि हमने सुधन्वा गन्धर्वसे क्या पूछा था और उसने क्या बताया था?

याज्ञवल्क्यने तत्काल उत्तर दिया:—

पारीक्षित कहाँ रहता है और तार्क्ष्य अग्नि चयनपर अश्वमेध करनेवाला कहाँ जाता है यह तुमने सुधन्वा गन्धर्वसे पूछा था।

तुम्हारे प्रश्नोंके उत्तरमें सुधन्वाने कहा था-पारीक्षितका स्थान ब्रह्माण्डके परे है। तार्क्ष्यचयन पूर्वक अश्वमेघ करनेवाले जहाँ जाते हैं वहाँ इन्द्रकी गति भी नहीं है। ब्रह्माण्ड कटाह संधिमार्ग इतना सूक्ष्म है कि इन्द्र गरुड़रूप लेकर वायुलोकमें पहुंचता है। फिर वायुको स्वाधिन करके वायुस्वरूप प्राप्त करता है। तबही इन्द्र ब्रह्माण्डके उसपार पारीक्षितके स्थानतक जासकता है।

यह उत्तर सुनतेही श्री भुज्युऋषि भी शांत होकर बैठ गये। योगीश्वर याज्ञवल्क्य परम ज्ञानी ही नहीं वरन सर्वत्रगति रखने वाले चमत्कारी योगी भी हैं यह बात सबको विदित हो गयी।

फिरभी प्रसङ्ग था भारतभरमें सर्वश्रेष्ठत्वका, इस लिये एक एक करके अनेक विद्वान ऋषिगण प्रश्न करते ही रहे—योगीश्वर याज्ञवल्क्यभी सबको निर्विवादात्मक उत्तर देते चले गये।

चक्रायण उषस्त्यभी परास्त—

उषस्तने प्रश्न किया, अच्छा याज्ञवल्क्य यह तो सब जानते हैं कि सबके अन्तर्जगत्‌में आत्मा होता है और वह आत्मा ब्रह्मस्वरूप ही है, पर क्या तुम उसको स्पष्ट सिद्ध करके दिखला सकते हो?

उत्तर:—वह आत्मा सबके अन्तर्जगतमें विद्यामान है। जिससे इस सब आत्मवान हैं, वही आत्मा है। वही प्राणका प्राण है, अपानको अपानपन देनेवाला है; वही व्यान, उदान आदि प्राण वायुओंको संचालित करता और शक्ति देता है।

पुनः प्रश्न—आपतो उड़ती हुइ बातें करते हैं। दूरसे दौडती हुई गाय अथवा भागते हुए घोडेकी ओर संकेत करनेसे बात पूरी नहीं होती। मैं पूछता हूं कि क्या उस आत्माको प्रत्यक्ष-परोक्ष रूपसे दिखा सकते हो या नहीं?

उत्तर :-वह आत्मा सबके भीतर विद्यमान है। वही दृष्टिसे देखता है, दृष्टि उसको नहीं देख सकती है। वह श्रोत्रसे सुनता है, कान उसको नहीं सुन सकते हैं। वही मनसे मनन करता है, मन उसके मननका करण नहीं बनता है, जानने वाला मूल ज्ञान भी वही है, ज्ञानकी गतिका आधार उससे पृथक नहीं है। उसके रहते ही तुम और हम अपनेको तुम और हम समझते और कहते हैं। इस दशामें वह हथेलीपर रखकर दिखानेका विषय नहीं है और न आपमें उसको देखनेका सामर्थ्य है। वह आपसे पृथक नहीं है, पृथक वस्तुको ही इस तरह देखना संभव हो सकता है।

यह उत्तर सुनकर उषस्त भी अपने आसनपर सुखासीन होकर ढीले हो गये।

कहोल कौषीतकेयभी परास्त—

इनके बाद कौषीतकके पुत्र कहोल सामने आये; और बोले:—

जो आत्मा सर्वान्तर्गत है उसको अधिक खोलकर प्रत्यक्षके समान बताओ तो जानें।

याज्ञवल्क्यने फिर उत्तर दिया :— जो क्षुधा, पिपासा, शोक, मोह, जरा, मृत्युके काबूमें आनेवाला न होकर इनसे अलिप्त है, इस अपने आत्माको जानकर ही ब्रह्मज्ञानी पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा (संतति, धन और ख्यातिका मोह) छोडकर "मैं ब्रह्मस्वरूप हूं" इस बातको समझता हुआ भिक्षार्थ विचरण करता है वही आत्मवित और सर्वांतर आत्मा तुम स्वयम् हो। इस प्रकारके तुमके विना शेष समस्त वस्तुनिचय मायिक एवं मिथ्या है।

इसपर कहोल भी चुप हो गये।

गार्गीकी पूर्ण सन्तुष्टि—

वचकनीं ऋषिकी परम ब्रह्मवादिनी कन्या गार्गीने पूछा:—

वताइये तो सारा संसार किससे व्याप्त है ?

याज्ञ०: उदकसे।

गार्गी: उदक किससे व्याप्त है ?

याज्ञ०: वायुसे।

गार्गी: वायु किससे व्याप्त है ?

याज्ञ०: अंतरिक्षसे।

गार्गी: और अन्तरिक्ष किससे व्याप्त है ?

याज्ञ०: गन्धर्वलोकसे।

गार्गी: और गन्धर्वलोक ?

याज्ञ०: आदित्यलोकसे व्याप्त है।

गार्गी : आदित्यलोक किससे व्याप्त है ?

याज्ञ०: चन्द्रलोकसे।

गार्गी : चन्द्रलोक ?

याज्ञ०: नक्षत्रलोकसे।

गार्गी : नक्षत्र लोक ?

याज्ञ०: इन्द्रलोकसे।

गार्गी : इन्द्रलोक किससे व्याप्त है ?

याज्ञ०: प्रजापात्य लोकसे।

गार्गी : यह प्रजापात्य लोक ?

याज्ञ०: ब्रह्मलोकसे।

गार्गी : ब्रह्मलोक किससे व्याप्त है ?

याज्ञवल्क्य बोले :—

गार्गी माऽति प्राक्षीर्मा ते मूर्धा। व्यासद्नप्तति प्रश्नां वै देवतामऽति पृच्छसि। गार्गिः माऽति प्राक्षीरिति।

गार्गी इसप्रकारके अनाधिकार पूर्ण और परब्रह्मके परेकी बात मत पूछो। तुम्हारा मस्तक फट जायगा। वेद और ब्रह्मकी मर्यादाका अतिक्रमण करके कोई प्रश्न मत पूछो!

यहाँतक तर्क करनेके बाद गार्गीने भी निज आसन ग्रहण कर लिया।

उद्दालक आरुणी सेझडप—

तत्वज्ञानियोंके शिरमौर उद्दालक आरुणीको, इनके पश्चात् सामने आना पड़ा। यह महात्मा एक विषयमें किसी समय याज्ञवल्क्यके गुरु ही रह चुके थे। यह प्रश्नोत्तर मानों गुरुदेव द्रोणाचार्य और सुपट्ट शिष्यवर्य अर्जुनके संग्रामके समानही विचित्र और महत्वपूर्ण था।

याज्ञवल्क्येति होवाच मद्रेष्ववसाम पतञ्चलस्य काप्यस्य गृहेषु यज्ञमधीयानास्तस्यासीद्भार्या गन्धर्वगृहीता तम पृच्छाम कोऽसीति । सोऽब्रवीत्कबन्ध अथर्वण इति । सोऽब्रवीत पतञ्चलं काप्यं याज्ञिकांश्च वेत्थ नु त्वं काप्य तत्सूत्रं येना यं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणिच भूतानि सन्दब्धानि भवन्तीति। सो ऽब्रवीत् पतंचलः काप्यो नाहं तद्भ गवन्वे देति। सोऽब्रवीत् पतञ्चलं काप्यं याज्ञिकांश्च वेत्थ नत्वं काप्य तमन्तर्यामिणं य इमंच लोकं परंच लोकं सर्वाणिच भूतानि अन्तरो यमयतीति । सोऽब्रवीत् पतंचलः काप्यो नाहं ते भगवन्वेदेति । सोऽब्रवीत् पतञ्चलं काप्यं यांज्ञिकांश्च यो वै तत्काप्यसूत्रं विद्यात्तंचान्तर्यामिणमिति स ब्रह्मवित् स लोकवित्स देववित्स भूतवित्स आत्मवित्स सर्व विदिति । तेभ्योऽब्रवीत्त-दहं वेद तच्चेत्वं याज्ञवल्क्य सूत्रमविद्वांस्तं चान्तर्यामिणं ब्रह्म-वर्गारुदजसे मूर्धा ते विपतिष्यतीति वेद वा अहं गौतम तत्सूत्रं तं चान्तर्यामिणमिति यो वा इदं कश्चिद्ब्रूयाद्वेद वेदेति यथा वेत्थ तथा ब्रूहीति ।

देखो याज्ञवल्क्य, " ऐसावैसा पूछोगे तो तुम्हारा शिर फटकर भूमिपर गिर पड़ेगा " इसप्रकारकी धमकी भरी बातें कहनेकी आवश्यकता मेरे प्रश्नोंके सम्बन्धमें नहीं है। जो भी पूछता हूँ उसका उत्तर स्पष्ट रूपमें जैसा जानते हो वैसाही देते चलना। यज्ञशास्त्रअध्ययन निमित्त मैं एक बार मद्रदेशमें कपिगोत्रवाले पतंचल महाभागके यहां गया हुआ था उनकी पत्नी गन्धर्वगृहीता है। उक्त स्त्रीके शरीरमें प्रवेश करके बोलनेवालेने अपना नाम कबंध आथर्वण बताया था। उसीने पतञ्चलसे पूछा था।

१. तुम उस सूत्रको जानते हो क्या जिसमें लोक, परलोक, सर्व-भूतमय जगत, इत्यादि ग्रथित हो रहे हैं ?

२. तुम उस अन्तर्यामीको जानते हो क्या जो लोक-परलोक और सब प्राणियोंके अन्तरात्माको नियमित करता हुआ सबको दारुयंत्रमिव घुमाता हुआ सबसे उनके अनुरूप कार्य व्यवहार कराता है ?

पतंचलने कहा था, देव हम तो इनको नहीं जानते। इसपर गंधर्वने फिर कहा था कि उनको जो कोई जानता है वही ब्रह्मवेत्ता है, वही लोकवेत्ता है, वही देववेत्ता है, वही सर्ववेत्ता है, वही भौतिकविज्ञानवेत्ता है, वही सर्ववेत्ता है। पूछनेपर गंधर्वने कहा था मैं ही इनको जानता हूं—और उसने बताया भी था।

याज्ञवल्क्य तुम उत्तरको जानते हो तो बताओ कि कबंधने उक्त स्त्रीके शरीरमें प्रवेशपूर्वक क्या बताया था ?

याज्ञवल्क्यने, इस परम अदभुत देवी प्रसंगको योगबलपूर्वक जानते हुए कहा—

१. जिस सूत्रमें लोक-परलोक-जड़चेतन ग्रथित हैं, वह वायुही है। और

२. इस सूत्रसंचालकका नाम ही अन्तर्यामी है।

जो पृथ्वीके आधार देवके अन्तरमें रहता है, पृथ्वी जिसका शरीर है पर जिसको पृथ्वी नहीं जान पाती है, वही अन्तर्यामी है। जो पानीमें रहता है, जो जलदेवताके अन्तर्जगतमें विराजमान है, जल जिसका शरीर है, फिर भी जिसको जल नहीं जानता है वही अन्तर्यामी सर्वात्मा है। जो अग्निमें विराजमान और ओतप्रोत है पर जिसको अग्नि नहीं जानती है, वही सर्वान्तर्यामी आत्मा है। जो अन्तरिक्षमें विराजमान है, अन्तरिक्ष जिसका शरीर है, फिर भी जिसको

अन्तरिक्ष नहीं जानता है, वही सर्वान्तर्यामी आत्मा है। वह अन्तरिक्ष का नियमन करता है। जो दिविमें है, दिवि जिसका शरीर है, फिर भी जिसे दिवि नहीं जानता है, जो दिविका नियमन करता है वही सर्वान्तर्यामी आत्मा है। जो वायुमें ओतप्रोत है, वायु जिसका शरीर है, फिर भी वायु जिसे नहीं जानता है वही सर्वान्तर्यामी आत्मा है। जो सूर्यमें विराजमान है, जिसे सूर्य नहीं जान पाता है, जो सूर्यका नियमन करता है, सूर्य जिसका शरीर है वही सर्वान्तर्यामी आत्मा है। जो दिशाओंमें, जो चन्द्रतारिकाओंमें, जो आकाशमें, तममें और तेजमें ओतप्रोत होकर विराजमान है, जिसको शरीर रूपधारी दिशाएँ, चन्द्रतारिकाएँ तेज और अंधियारी नहीं जानते हैं, जो इन सबका नियमन करता है वही सर्वान्तर्यामी आत्मा है।

जो सब प्राणियोंमें विराजता है, जिसके सब प्राणी शरीर मात्र हैं, जो सब प्राणियोंका नियमन करता है तथापि जिसको प्राणी नहीं जान पाते हैं, वही सर्वान्तर्यामी आत्मा है। जो प्राणोंमें विराजमान है, प्राण जिसका शरीर है, जो प्राणोंका नियमन करता है—फिर भी प्राण जिसको नहीं जान पाते हैं वही सर्वान्तर्यामी आत्मा है। जो वाणीमें, चक्षुमें, श्रोत्रमें, मनमें, त्वचामें, विज्ञानमें, शुक्रमें विराजमान और ओतप्रोत रहते हुए भी, इन शरीर स्वरूपोंके लिये जानने योग्य नहीं है और जो सबको जानते हुए इन सबका नियमन करता है, वह सर्वान्तर्यामी आत्मा ही है। वही देखनेवाला है, वह सुननेवाला है; वह मनन वाला है, वही विज्ञानवाला है, वही अमर अन्तर्यामी आत्मा है।

इस उत्तरोपरान्त उद्दालक आरुणिने मौनावलम्बन कर लिया।

अजेय और सर्वश्रेष्ठ

उद्दालक आरुणिका परास्त होकर मौनावलम्बन करलेना कोई सामान्य बात नहीं थी। गार्गीने जो कुतर्क शुरू किया था कि— इन सबके ऊपर परब्रह्म है तो परब्रह्मके ऊपर भी कोई और होगा, उसके उत्तरमें याज्ञवल्क्यने इस प्रकारके कुतर्क न करनेका परामर्श देते हुए ही यह भी कह दिया था कि मेरे सामने इस प्रकारके परब्रह्म निंदापरक प्रश्नोत्तर मत कर, नहीं तो तेरा शिर कटकर गिर जायगा। यह बात याज्ञवल्क्यने अपने सामर्थ्य और वरदानको लक्ष्य करके कही थी। सूर्यनारायणने प्रसन्न होकर दर्शन देते हुए याज्ञवल्क्यको यह वरदानभी दिया था कि तेरे सामने जो कोई तेरी निंदा करेगा उसका शिर कटकर गिर जायगा। याज्ञवल्क्यके विनय करनेपरही भगवान्‌ने इसकी मर्यादा २० संख्याके साथ बांध दी थी—अर्थात् जो कोई तुझे अपमानपूर्वक २० बार बुरा कहेगा उसका शिर कटकर गिर जायगा। उद्दालक आरुणिने याज्ञवल्क्यको पहलेही प्रश्नके समय लताड़ दिया था कि मुझे वैसी धमकी मत देना जैसी तुम गार्गीको दे चुके हो। उनको अपने अपरिमेय पाण्डित्यपर पूर्ण विश्वास भी था और वह एक समय याज्ञवल्क्यके गुरुभी रह चुके थे। इसपरभी उन्होंने जो प्रश्न किये वह अतिशय अश्रुतपूर्व और विचित्र थे। "बताओ गन्धर्व ग्रहीता स्त्रीने कौनसे दो प्रश्न हमसे पूछे थे और हमसे उत्तर न बननेपर स्त्रीके मुखसे बोलते हुए गन्धर्वने उन प्रश्नोंके क्या उत्तर दिये थे ?"

याज्ञवल्क्यने यह बता दिया कि गंधर्वने उक्त स्त्रीके शरीरमें प्रवेशपूर्वक पूछा था कि (१) क्या तुम उस गौतम सूत्रको जानते हो जिससे

लोकपरलोक और उनमें स्थित सब स्थावर–जंगम बंधे हुए हैं। और (२) क्या तुम अन्तर्यामी आत्माको जानते हो !

योगीश्वर याज्ञवल्क्यने वर्षों पूर्व, सुदूरस्थानमें एक स्त्रीके शरीरमें प्रविष्ट गंधर्वकी कथित दोनों बातें, योगबलसे, उत्तरों सहित, बतला दीं। तबतो इस चमत्कारके पश्चात् उद्दालक आरुणिको पाण्डित्य पौरुषपरीक्षाका दाव हार जाना ही पड़ा।

अब केवल विदग्ध शाकल्यही रह गये थे। इनसे याज्ञवल्क्यने ऋग्वेद पढा था और त्याग दिया था। विदग्ध शाकल्यके सिवा और कोई भी ऋषिमुनि याज्ञवल्क्यसे ज्ञानगरिमाकी बातें बघारनेवाला नहीं रह गया था। पर उन दिनों महापण्डिता गार्गी वेदवादिनी नारियोंकी शिरमौ थीं; उन्हें बड़े-बड़े ऋषिमुनिगण भी परमविदुषी मानते थे। गार्गीको भी अपने ज्ञानका भरोसा था, इस लिये दूसरी बार गार्गीने सामने उपस्थित होकर कहा:—

महामान्य ब्रह्मविद्या निष्णातों ! अब याज्ञवल्क्य बहुत अग्रसर हो चुका है। उसने अपनी विद्वत्तासे सबको चकित एवं थकित कर डाला है। इस स्थितिमें वादविवादकी पूर्णाहुतिके रूपमें, दो प्रश्न, मैं फिर करना चाहती हूँ। इन दोनों प्रश्नोंके उत्तर यदि याज्ञवल्क्य विवादरहित रूपमें देदे तो आप सब ठण्डठण्डमें निजनिजगृहकी ओर प्रयाण कर दीजियेगा, क्योंकि मेरे बाद वह आपमेंसे किसीसे भी हारनेवाला नहीं है।

उपस्थित ऋषिमुनि महाप्राज्ञ जनोंसे इतना कहकर, गार्गीने याज्ञवल्क्यसे कहा:–

याज्ञवल्क्य ! दुर्निवार युग्मशर प्रहारकी भांति मैं तुझपर दो प्रश्नवाण छोड़ती हूँ।

प्र० १—याज्ञवल्क्य बताओ तो सही, ऊर्ध्वमें दिवि-अण्डकपालसे लेकर अधोअण्डकपाल पृथ्वीतक और इसके बीचमें तथा इधर-उधर जो कुछ हुआ, है और होगा वह किसमें ओतप्रोत है ?

उत्तर—गार्गी, यह सब कुछ आकाशमें ओतप्रोत है।

प्र० २—यह आकाश किसमें ओतप्रोत है ?

उत्तर—अक्षरब्रह्ममें ओतप्रोत है। वह आदि-अन्त-क्षय-रहित है। न वह स्थूल है, न सूक्ष्म। न वह दीर्घ है न ह्रस्व। वह वर्णरहित, असंग, अंधकार रहित, ज्ञानरूप, स्वयम्वेद्य, संकल्प-रहित और आत्मप्रभ है। उसीके प्रशासनसे सूर्य, चंद्र, द्यौ, पृथिवी, निमेष-मुहूर्तादि, मास संवत्सरादि ही नहीं, पर्वत नदी इत्यादि भी अवस्थित हैं और अपने २ कार्यमें निरत हैं। इस परब्रह्मको जाने विना देव-पितर निमित्त किये जानेवाले सब कार्य निष्फल रहते हैं और यजमान जन्ममरणके चक्करमेंही पड़ा रहता है। जो इसको स्वात्म्यैकभावेन जानकर जप तप होम आदि करते हैं वेही मोक्षपद प्राप्त करते हैं।

सा होवाच ब्राह्मणां भगवन्तस्तदेव बहुमन्येध्वं यदस्मान्नमस्कारेण मुच्येध्वं न वै जातु युष्मामिमं कश्चिद्ब्रह्मोद्यं जेतेति ततो ह वाचक्नव्युपराम।

याज्ञवल्क्यका यह उत्तर सुनकर वाचक्नी गार्गीने कहा:—

महाराज ब्रह्मविदो, आप सब भी नमस्कार कर-करके स्वस्थानोंको पधारिये। मुझे निश्चय हो गया है कि इस ब्रह्मज्ञानी याज्ञवल्क्यको तुममेंसे कोई भी न जीत सकेगा।

यजुर्वेदाचार्य वैशम्पायनने याज्ञवल्क्यसे सीधा संघर्ष न लेकर अपने पट्टशिष्यको खड़ा किया था, वह क्षणभरमें ही हतप्रभ हो गया!

उद्दालक आरुणि मंत्रगुरु और महान ब्रह्मवेत्ताने खुला संघष लेकर अपने पूर्व शिष्यको परास्त करनेके लिये एडी-चोटीकी शक्ति लगाते हुए अतिशय रहस्यमय और दुर्ज्ञेय प्रश्नोंका प्रहार करके पराजय स्वीकार कर लिया । और गार्गी नमस्कार करके अपने अपने आश्रमकी ओर पधारनेकी सबको सलाह दे चुकी तो ऋग्वदाचार्य विदग्ध शाकल्यने पदार्पण किया । उन्होंने बुद्धि विचक्षण वकीलकी भांति पहले थका डालने वाले अगणित प्रश्न पूछ डाले ।

प्रश्न—देवता कितने हैं ?

उत्तर—तेंतीस

प्रश्न—किसतरह ?

उत्तर—८ वसु, ११रुद्र, १२आदित्य, १ इन्द्र, १प्रजापति=३३ अग्नि, भूमि, वायु, आकाश, आदित्य, चन्द्र, नक्षत्र, ग्रह, यह आठ वसु हैं । दश प्राण और १ जीवात्मा, यह ११ रुद्र हैं । १२ महीनोंके अधिपतिही द्वादशादित्य हैं । यज्ञही इन्द्र स्वरूप है ।

प्रश्न—दिग्देवता कितने हैं ?

उत्तर—पूर्व दिशाका अधिदेवता सूर्य ह जो अध्यात्म संज्ञासे नेत्र गोलकमें स्थित है । रूप नेत्रका अधिष्ठान है, और रूपका अधिष्ठान हृदय है ।

दक्षिण दिशाका अधिष्ठाता यम है । वह यज्ञस्थानमें रहता है, यज्ञ दक्षिणामें, दाक्षिणा श्रद्धाम और श्रद्धा हृदयमें अवस्थित है । पश्चिम दिशाका अधिदेवता वरुण है । वह उदकमें रहता है ।

उदक रेतस्थानमें और रेत हृदयस्थानमें अवस्थित है। उत्तर दिशाका स्वामी चन्द्र है। यह दीक्षास्थानमें रहता है। दिक्षाका आधार सत्य, सत्यका अवलम्ब हृदय है।

इस प्रकारके प्रश्नोत्तरोंमें पर्याप्त गर्भा गमी होती चली गयी। याज्ञवल्क्यने कह दिया कि क्या इतने ब्राह्मण कोरेही बैठे हैं, तुमही इनकी ओरसे बोले चले जाओगे। विदग्ध शाकल्यने इतने ब्राह्मणोंकी अवगणना करने पर थोड़ा झिडक दिया। इसप्रकारसे उत्तरोत्तर प्रखरता बढती चली गयी। याज्ञवल्क्य उत्तर देते चले गये और शाकल्य पछते चले गये।

सूर्यनारायणके प्यारे शिष्य परमतेजस्वी याज्ञवल्क्यका भी पारा ऊंचा होता चला गया। शाकल्यने व्यंगबाणप्रहारपूर्वक कहा कि "तो सबका ही अधिष्ठान हृदय होगया ?" याज्ञवल्क्यने तेजोपुंज होकर उत्तर दिया-यही आत्माका निवास स्थल है। यह आत्मस्वरूप ही तो तू है, आर क्या है ?

अब कड़ककर याज्ञवल्क्य बोले, पूछो, पूछो, पूछो—एकएक करके पूछो–सब मिलकर पूछो; जैसे चाहे वैसे पूछो। यदि आप सब थक गये हैं पूछते पूछते तो हे विदग्ध शाकल्य, मैं ही आपसे यह एक प्रश्न पूछता हूँ—इसका उत्तर आप न दे सकेंगे तो मस्तक कटकर भूमिपर गिर पड़ेगा। याज्ञवल्क्य पूछने लगे:—

यथावृक्षो वनस्पतिस्तथैव पुरुषोऽमृषा।
तस्यलोमानि पर्णानित्वगस्योत्पाटिका बहिः ॥

वृक्ष और मनुष्य जीवनमें पूरी समानता है, यही सत्य है। मनुष्य-शरीरपर रोमावलि और वृक्षपर पत्रावली एकही दशाकी द्योतक हैं। शरीरकी खाल और वृक्षकी छालभी समान धर्मवाली ही हैं।

त्वच एवास्य रुधिरप्रस्यन्दि त्वच उत्पटः।
तस्मात्तदातृण्णात्प्रैतिरसो वृक्षादिवाऽऽहतात् ॥

खालको खुरचनेसे रक्त प्रधावित होता है। वृक्षकी छाल छीलनेपर भी रस प्लावित होता है।

मांसान्यस्य शकराणिकिनाट स्नाव तत्स्थिरम्।
अस्थीन्यन्तरतो दारुणिमज्जा मज्जोपमा कृता ॥

सारांश यह कि प्राणीके शरीरमें अस्थि, स्नायु इत्यादि जो भी अंग-प्रत्यंग हैं उन सबके समानान्तर वृक्षोंमें भी हैं। फिर

यद् वृक्षो वृक्णो रोहतिमलात् नवतरः पुनः।
मर्त्यः स्विन्मृत्युना वृक्णः कस्मान् मूलात्प्ररोहति ॥

हम देखते हैं कि वृक्षको काट डालनेपर वह पुनः पुनः जड़से हरा होता रहता है। उसमें शाखाप्रशाखाओंका पुनः आविर्भाव कभी नहीं थमता।

शाकल्यजी बताइये तो सही, नरतन रूपी वृक्षमें यह बात क्यों नहीं है। वह एकबार मृत्युके वश होकर जो कटता है तो फिर हरा क्यों नहीं होता ?

इस प्रश्नको सुनकर विदग्ध शाकल्य चकरा गये। वे कुछ न समझ सके कि क्या बताएं। फलतः सूर्यनारायणके वरदानके अनुसार बारम्बार अवगणना करनेवाले शाकल्यमुनिका मस्तक टूटकर भूमिपर

गिर पड़ा। इस प्रकारसे परम श्रद्धास्पद ऋग्वेदाचार्य देवमित्र शाकल्यके पराभूत होकर विदा होनेके पश्चात बारम्बार आव्हान करनेपर भी कोई ब्रह्मज्ञानी याज्ञवल्क्यसे वाद करनेके लिये सामने नहीं आया। मानो महापाण्डितगण न थे—चित्र थे, प्रतिमा थे।

इस विजयने याज्ञवल्क्यको सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी, महा विद्वान और योगीश्वरका पद प्रदान कर दिया और उनकी कीर्तिध्वजा आकाशमें फहराने लगी।

यहाँसे याज्ञवल्क्य जनकके भी पूज्य गुरु स्थापित होगये। जन्मस्थान (नासिक पंचवटी) में जनकने इनके द्वाराही अश्वमेध यज्ञ कराया। देशके अनेक प्रमुखस्थानोंमें याज्ञवल्क्यको मानकर ही यज्ञ होने लगे। तबसे शुक्लयजुर्वेद सम्मत याज्ञवल्क्य निरूपित यज्ञ विधिही सर्वत्र मान्य होती चली आती है।

याज्ञवल्क्यका गृहस्थाश्रम

तपश्चर्यापूर्वक सूर्यनारायणसे वरदान और शुक्ल यजुर्वेद प्राप्त करके, स्वतंत्र आश्रम बनाते हुए जब याज्ञवल्क्य ज्ञानप्रचारमें संलग्न थे, तबही, शास्त्रीय मर्यादानुसार ब्रह्मचर्यव्रत पूर्ण करके उन्होंने विवाह कर लिया था। उन्हें पत्नी मिली थी। परम सुंदर, सुशीलवती और वेदान्तिनी कात्यायनी। कात्यायनी सब प्रकारसे आदर्श देवाङ्गनाके समान थी। अन्तिम शास्त्रार्थके दिनोंमें एक और नया प्रसंग उपस्थित हो गया। जनकके प्रधानामात्यका नाम मित्र था। उनकी पुत्री मैत्रेयी वय प्राप्त थी। वेदवादिनी कुमारी—योगिनी गार्गी उसकी होती थीं मौसी। और मौसीके प्रेमप्रसादमें मैत्रेयीको मिल गया था ब्रह्मज्ञानका चस्का। फलतः वह भी मौसीके समान आजन्म कौमार्यव्रताचरण पूर्वक वेदवादिनीका जीवन स्वीकार करना चाहती थी। जनककी इस महासभामें उसने भी शास्त्रचर्चाका रसास्वादन किया था। तेजस्वी याज्ञवल्क्यके परम ब्रह्मज्ञानने उसको अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। वह याज्ञवल्क्यसे ब्रह्मविद्याध्यन करनेकी कामना करने लगी। पर "पतिरेक" गुरुस्त्रीणांका सवाल आडे आरहा था। इधर उसने अपने पितासे स्पष्ट कह दिया कि याज्ञवल्क्य मिलता हो तोही मैं गृहस्थजीवन स्वीकार कर लूंगी, याज्ञवल्क्यके न मिलनेपर मुझे तो मौसी गार्गीके पदचिन्होंपर चलना है।

जनकके अमात्य मित्र और याज्ञवल्क्यमें निकटता बढ गयी थी। इन्हीं दिनों, अकस्मात एक प्रसंग और भी उपस्थित होगया। जंगलमें बैठे हुए याज्ञवल्क्य उस दिन योगमें तल्लीन थे। पीछेसे सिंहने उनपर

हमला कर दिया । पर संयोगवश दो कुमारोंके साथ जनकके प्रधानामात्य उसी समय उस स्थानपर जा पहुंचे । देखते देखते, दो तीरोंने एक साथ सिंहको अन्धा बना दिया और तीसरे तीरने उसके पेटको छेद डाला । सिंह धाड़ मारकर चीत्कारध्वनि करता हुआ तड़पने लगा । योगीश्वरका ध्यान टूटा तो उन्होंने आक्रमणकारी सिंहको दुर्दशाग्रस्त पड़ा पाया । निगाह उठी तो देखा कि मित्र चले आरहे हैं । याज्ञवल्क्यने इस अप्रत्याशित उपकारके लिये भूरिशः कृतज्ञता प्रकाशित की और मंत्रीने याज्ञवल्क्यके प्रति भूरिशः श्रद्धा भक्तिभाव प्रकट किया । इसके पश्चात मेलमिलाप बढ गया । कात्यायनी भी प्रधानामात्यके घर आने-जाने लगीं । जब उनको मैत्रेयीके शुद्ध सात्विक प्रेमकी बात विदित हुई तो कात्यायनीने बीचमें पड़कर गुत्थीको सुलझा दिया । उसने तकरार करके याज्ञवल्क्यको द्वितीय विवाह करलेनेके लिये मना लिया । इस प्रकार याज्ञवल्क्यका आश्रम स्वर्गोपम होगया । धनधान्यपूरित आश्रममें लक्ष्मी और सरस्वतीसे कात्यायनी और मैत्रेयीके साथ वे गृहस्थ धर्मका पालन करने लगे । मैत्रेयी और कात्यायनी याज्ञवल्क्यको न मिली होती तो संसार उस अद्भुत ब्रह्मज्ञानसे वंचित रह जाता जो इन पत्नियोंको ब्रह्मविद्याका ज्ञान कराते हुए योगीश्वर याज्ञवल्क्यने संसारको दिया है । वेदमर्यादाको सुदृढ बनाते हुए याज्ञवल्क्यने ब्रह्मचर्याश्रममें ऋषि ऋणसे मुक्ति प्राप्त की । फिर गृहस्थाश्रमका निर्वाह करते हुए यज्ञोंसे देवऋण चुका दिया । तदनन्तर पुत्र और पुत्रीवान होकर पितरऋणसे शांखायन कौषीत्कीको ऋग्वेद निष्णात, माध्यांदिन प्रभृति १५ शिष्योंको शुक्ल यजुर्वेद पारंगत, कौथुमि आदि प्रमुख शिष्योंको सामवेद धुरन्धार और

शौनक प्रभृतिको अथर्वण वेद ज्ञानवित बनाते हुए याज्ञवल्क्यने गुरु ऋणभी उतार दिया। विदित होता है कि कदाचित मैत्रेयीके कोई सन्तान नहीं हुई। ज्येष्ठ पत्नी कात्यायनीसे चन्द्रकांत, महामेघ, और विजय नामक तीन पुत्र उत्पन्न होनेका प्रमाण आन्हिकसूत्रावलीके अन्तमें ग्रथित याज्ञ-वल्क्य चरितसे मिलता है। स्कंदपुराणमें लिखा है कि याज्ञवल्क्यको कात्यायनीसे जिस पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई थी उसका नाम कात्यायन हुआ। कात्यायनके सम्पादित और रचित कई ग्रन्थ हैं। जो आदित्य सम्प्रदायकी बहुमूल्यनिधि समान हैं। अपनी शाखा सम्बन्धी ही नहीं, ऋग्–साम–अथर्वणवेदोंके सम्बन्धमें भी सुयोग्यतापूर्ण ग्रंथरचनेपर इन्हींका नाम पारस्कर प्रसिद्ध हुआ ह।

योगीश्वर याज्ञवल्क्यने अपनी ओरसे मानवजातिके कल्याणके लिये हमें शुक्लयजुर्वेद, शतपथ ब्राह्मण, याज्ञवल्क्यस्मृति, प्रतिज्ञासूत्र और याज्ञ-वल्क्यशिक्षा नामक ग्रन्थरत्न प्रदान किये हैं। इनके आतीरिक्त बृह-दारण्यक उपनिषदमें प्रचारित ब्रह्मज्ञानका मुख्य भागभी याज्ञवल्क्यकाही है।

सिद्धोंकासा चमत्कार

परम पवित्र था याज्ञवल्क्यका संसारिक जीवन जिसमें चमत्कारोंकी अद्भुत श्रृंखला पायी जाती है। उन्होंने अपने तपोबल से आदित्यब्रह्मको प्रसन्न करके ज्ञानविज्ञानमें परमोच्चपद प्राप्त किया था—और सरस्वतीको जिह्वाग्रपर मांग लिया था। इसके सिवा उन्हें और भी वरदान मिले थे। इस युगमें, इसीलिये उनसे श्रेष्ठतर कोई ऋषिमुनि नहीं हुआ है। साक्षात् परब्रह्मसे इसप्रकारसे वेद तो किसीयुगमें भी किसीने प्राप्त नहीं किया है। इसीलिये शुक्ल यजुर्वेदको जो महत्व प्राप्त है वह अन्य वेदोंसे भी अधिकतर है। याज्ञवल्क्य स्मृति धर्मशास्त्र ग्रन्थ है जो गार्हस्थ जीवनकी मर्यादाएं स्थापित करता है। मनुस्मृतिके पश्चात जो सूर्यपुत्र मनुभगवानकी ही देन है, किसी भी स्मृतिको इतना गौरव नहीं मिला है। इस पर अनेक टीकाएं हुई हैं जिनमें मिताक्षरा मुख्य और सर्वश्रेष्ठ है। याज्ञवल्क्य स्मृतिकी मिताक्षरा टीकाके अनुसार ही भारतमें, अंग्रेजी शासनकाल पर्यन्त, हिन्दू गृहस्थ विधानको कानूनी रूप मिला है। देशभरके और इंगलेण्डभर के सुविख्यात विधान विचक्षणजनोंने आधुनिकतम रीतिपर इसी स्मृतिकी वैधानिकता स्वीकार की है। अबतक भी, थोड़े हेर फेरके साथ, याज्ञवल्क्यस्मृति निरूपित एवं मिताक्षराद्वारा प्रस्फुटित हिन्दू गृहस्थोंका सांसारिक विवाद इसीके अनुसार अदालतें मिटाती चली आती हैं। योगीश्वरकी भावना मुख्यतया प्रथमकोटिका यज्ञविधाता बननेकी थी, और यह वस्तु उन्होंने परमोज्ज्वल रूपमें प्राप्त की है। शतपथ ब्राह्मण वैदिकज्ञान और विधियोंका सर्वमान्य ग्रन्थ है। यही कारण है कि प्राप्त हो सकनेवाले ब्राह्मण ग्रन्थोंमें शतपथ ब्राह्मणकी कोटिका कोई भी ब्राह्मण ग्रन्थ नहीं है। परब्रह्म विद्याके

मुख्य आचार्य पदाभिषिक्त होनेका प्रमाण बृहदारण्यकोपनिषदसे मिल जाता है। समस्त उपनिषदोंमें बृहदारण्यक सर्वोपरि है। इसका अध्ययन—मनन—अनुशीलन किये विना किसीको इस ज्ञानमें परिपूर्णता प्राप्त नहीं हो सकती।

शास्त्रज्ञान परीक्षाओंके समय याज्ञवल्क्यने निरन्तर विजयोंपर विजय प्राप्त करते हुए अद्भुत चमत्कार देखा और दिखाया था। इन चमत्कारोंमें भी वह चमत्कार अतीव अलौकिक था जो देवप्रिय विदग्ध शाकल्यके पराभवके समय शिरपतनके रूपमें प्रकट हुआ था।

उनके जीवनमें और भी अनेक ऐसे चमत्कार होते रहे होंगे, पर एक मुख्य चमत्कारका रूप पुराण ग्रन्थोंमें और भी मिलता है। इसका उल्लेख स्कंदमहापुराणमें किसी और ढंगसे हुआ है, अन्यत्र दूसरे रूपमें। किन्तु मुख्य बातमें कोई मतभेद दृष्टिगोचर नहीं होता है। यह चमत्कारपूर्ण प्रसंग इस प्रकार है कि महामुनि पिप्पलादने एक बार परम कोपाविष्ट होकर याज्ञवल्क्यके नाशके लिये यज्ञ किया था। शत्रुनाशके लिये ऋषिको आभिचारक हवन करके कृत्या नामक महाशक्ति पैदा करना आता था। इस कृत्याशक्तिसे प्राण बचानेका सामर्थ्य दो एक देवताओंके आतिरिक्त किसीमें नहीं है। कृत्याने अग्निकुंडसे सशस्त्र प्रकट होकर पिप्पलादसे पूछा कि ऋषिवर किस लिये मुझे स्मरण किया है, आपने। पिप्पलादने कहा कि तू मिथलामें पहुंचकर याज्ञवल्क्यका नाश करदे, इसी लिये लिये मैंने तुझे जगाया और स्मरण किया है। इस रीतिसे आदिष्ट होकर कालमूर्ति कृत्याने याज्ञवल्क्यका पीछा किया। इस महादेवी विपत्तिका सामना करनेमें असमर्थ होकर याज्ञवल्क्यने पहले जनककी शरण पकड़ी, पर

जनक उनको रक्षा कर सकनेका वचन न दे सके। तदनन्तर याज्ञवल्क्य क्रमश, देवेंद्र, ब्रह्मा और विष्णुका आश्रय ढूँढते फिरे। पर ऋषिकल्प ब्राह्मण द्वारा अग्निकी उपासनासे उत्पन्न हुई कृत्यासे येभी उनका त्राण न कर सके। अन्तमें याज्ञवल्क्य महादेवकी शरणमें पहुँच गये। वह परम योगी थे, अतः शंकरने उनको अपने स्वरूपमें लय हो जानेकी आज्ञा दी। इस प्रकार शंकर स्वरुप होने पर कृत्या उनका विनाश करनेमें असमर्थ होकर लौट गयी। शंकरने इसी समय याज्ञवल्क्यको सम्पूर्ण योगशास्त्र प्रदान करके अपना कवच प्रदान किया और सदाके लिये वज्रदेहधारी बना दिया। और शंकरनेही पहली बार श्रीमुखसे महा-पण्डित याज्ञवल्क्यको "योगीश्वर" की पदवी प्रदान की। इस प्रकारसे परम ऋषिकल्प याज्ञवल्क्य योगीश्वर भी होगये। तबसे आजतक संसारमें याज्ञवल्क्यका नाम योगीश्वर सहितही लिया जाता है। योगीश्वर याज्ञवल्क्य यही उनका पूरा नाम है। मानो विधाताने प्रारम्भसे ही यह वस्तु देकर उन्हें संसारमें लोककल्याण निमित्त भेजा था और उसकी परिपूर्णता महादेवशंकरके श्रीमुखसे होनी वदी थी। योगविद्याके लिये सूर्य और शंकर दोही देवता हैं। इनमें देवाधिदेव महादेवने (जिन्होंने शिवमहापुराणम श्रीमुखसे कहा है कि सूर्य मेरा ही रूप है—और हम दोही निष्कल निराकार ब्रह्म हैं) श्रीमुखसे पहली बार ही याज्ञवल्क्यको योगीश्वरकी पदवी प्रदान की थी। इतना गौरवगरिष्ठ उन्होंने अन्य किसीको नहीं बनाया।

यही पिप्पलाद मुनि अथर्ववेदमें पिप्पलाद शाखाका प्रवर्तक और ब्रह्मवेद सम्प्रदायकी पिप्पलाद साम्नायके जनक होगये हैं। यह कथा स्कंदमहापुराणके अवंतिखण्डान्तर्गत रेवाखण्डके नर्मदामाहात्म्य प्रकरणमें और इसी पुराणके नागरखण्डमें वर्णित है।

गुरुके भी गुरु

सूर्यनारायणसे वेद प्राप्त करनेके पश्चात् शतपथ ब्राह्मणकी रचना पूरी करके अपने पूर्व गुरुकी सेवामें याज्ञवल्क्य उपस्थित हुए और कहा:–

मुझसे गुरु दक्षिणा मांग लीजिये क्योंकि शास्त्रोंमें गुरुदक्षिणा देना अनिवार्यतः कथित है।

विदग्च शाकल्पने कहा:—

याज्ञवल्क्य तुमने खूब किया। अब तुम गुरु दक्षिणामें मुझे वह वेद रहस्यसहित प्रदान कर दो जिस लोक हितकारी सर्व पाप विनाशक वेदको तुमने सूर्यनारायणसे पाया है। यही मेरी गुरु दक्षिणा है।

इसपर याज्ञवल्क्य विदग्ध शाकल्यको शिष्यों सहित तपोवनमें ले गये जहां उन्होंने द्वादशादित्यकी स्थापना की हुई थी। तपोभूमिमें लेजाकर याज्ञवल्क्यने अपने पूर्वगुरु शाकल्यको और उनके सब शिष्योंको अभीष्ट ज्ञान प्रदान करके गुरुदक्षिणा देते हुए गुरुका भी गुरु होनेका पद प्राप्त कर लिया। शुक्लयजुर्वेदका उपनिषद सहित ज्ञान करानेके लिये याज्ञवल्क्यने ऋग्वेदके इन चारो सूक्तोंका ज्ञान प्रदय किया:—

रथं युंजेति........

त्रिष्टुमेति........

चित्रंदेवानामुद्गात नीकमति

हँसः पावमान इति

साथही सामवेदसे "आदित्य श्रेष्ठ प्रभृति २१ साम" भी उन्हें दिये। फिर अथर्ववेदसे (१) क्षरीका संपुट (२) सूर्यकल्प (३) शांतिकल्प आदि मुख्यमुख्य भागोंका ज्ञान प्रदान किया।

इस प्रकारसे गुरु दक्षिणा देकर याज्ञवल्क्य गुरुके भी गुरु बन गये।

आदित्य पुराणमें उत्तर खण्डके १२वें अध्यायमें वर्णित है कि याज्ञवल्क्यने वेदव्यासका गुरु-पद भी प्राप्त किया था। जिस समय भगवान वेदव्यासने वेदोंके चार भाग किये उस समयतक शुक्लयजुर्वेद सूर्यनारायणसे प्राप्त नहीं हुआ था। फलतः वेद-सम्पादनके कार्यको परिपूर्णता देनेके लिये उन्हें याज्ञवल्क्यसेही शुक्लयजुर्वेद पढना पड़ा था। अष्टोत्तर शत नामावलिमें, याज्ञवल्क्यका नाम कृष्णद्वैपायनाचार्य भी है। इससे इस शास्त्रीय वचनको और भी परिपुष्टि मिलती है।

सन्यास और स्वर्गारोहण

संसारमें सर्वश्रेष्ठ पदप्राप्त करनेके पश्चात् योगीश्वर याज्ञवल्क्यने चतुर्थाश्रममें प्रवेश करके सन्यास लेलिये। कात्यायनी पुत्रवती थी। मैत्रेयीके कोई सन्तान नही थी। पर दोनों परम विदुषी ब्रह्मवादि नीरियां आदर्श जीवन यापन कर रही थी। शास्त्रीय मर्यादानुसार अनुज्ञा प्राप्तिपूर्वक याज्ञवल्क्यने सन्यास ग्रहण किया और दण्डी होकर चतुर्थाश्रम धर्मका करते हुए विचरने लगे।

सन्यास लेनेसे पूर्व सम्पत्तिका बटवारा कर जानेकी इच्छा प्रकट करने-पर ब्रह्मवादिनी मैत्रेयीने कहा कि यह निकृष्ट धन सम्पत्ति लेकर मैं क्या करूंगी ? यह वस्तुतो मोक्षका कारण न होकर बंधनकाही कारण होती है। अतः मुझे तो आप वह दैवी सम्पत्ति देकर पधारिये जो परमोत्कृष्ट कल्याणकारिणी और मोक्ष प्रदायिनी ह।

मैत्रेयीके दायभाग स्वरूप योगीश्वरने फिर अंतिम ज्ञानगरिमाका परिचय करा दिया और अपने कर्तव्य पथपर अग्रसर हो गये।

वह सन्यासाश्रममें भी अद्वितीय हो गये हैं। इसी लिये उनके जो १०८ नाम प्रख्यात हैं उनमें "सन्यासिनामादिम्" प्रथम सन्यासी नाम भी है। तदातिरिक्त महा विद्वानोंका यह भी मत है कि कदाचित सन्यास दीक्षा विधिका निरूपण आर प्रचलन भी याज्ञवल्क्यनेही किया है—क्योंकि इसके पूर्व सर्वविधिविधान सहित यह सन्यासदीक्षा किसी ने और भी ली थी, इसका पर्याप्त प्रमाण अनुपलब्ध ह।

ब्रह्मचर्याश्रममें वह अपने कालके महान विद्रोही और क्रान्तिकारी विद्यार्थी होगये हैं। उन्होंने गुरुओंका आदर किया पर गुरुडमके छप्परके नीचे बेबस होकर पड़े रहना उन्होंने सदा अस्वीकार किया। इसी लिये उनकी विदग्ध शाकल्यसे नहीं पटी। कोई झगडेकी बात नहीं थी। पर आनर्त देशके राजाकी खवास कासा काम करना याज्ञवल्क्यको मंजूर न था। एक मद्यप—अश्रद्धालु और दुर्विनीत राजाके घरसे बुरा मानकर चले आनेवाले ब्रह्मचारी याज्ञवल्क्य, गुरुके आग्रहको भी मान न दे सके और शिष्यत्वको तिलांजली देकर चले आये। सूखी लकड़ीके खम्भको हरा करसकनेवाला चमत्कारपूर्ण मंत्राभिषिक्त अभिषेकजल अपने शिरपर छिड़कवानेके लिये राजा यथेष्ठ धनसम्पत्ति देनेके लिये तिलमिला उठा था। गुरुदेव कहते थे कि राजा तो राजाही है, अतः उसके अपराधोंकी अवगणना करके पूरा लाभ उठाना उचित है। ब्रह्मचारी याज्ञवल्क्य गुरुवचन मान लेते तो उन्हें और गुरुको अपरिसीम धन प्राप्त होगया होता।

पर ब्रह्मचारीने इस प्रकारके लाभको तुच्छ माना और ठोकर लगा दी। जिस गुरुने ब्राह्मणत्व और शास्त्रीय मर्यादाको नीचा रखकर राजैश्वर्यको प्रधानता दिलाना चाहाथा उसको नमस्कार करके ब्रह्मचारी अपने घर चले आये।

यजुर्वेदाचार्य वैशम्पायनसे तो और भी छोटी बात पर बिगाड हो गया था। तेजस्वी ब्रह्मचारीने अकेले ही अपने तपोबलसे अपने गुरुको ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त करनेके लिये पेश किया; पर गुरु चिड़चिड़ाहट और क्रोधमें रुष्ट हो गये। कहने लगे इतना बड़ा बनकर बात करनेवालेको मैं अपना शिष्य नहीं मानता।

तेजस्वी ब्रह्मचारीने भी उसी लयमें उत्तर दिया, भलाईका काम करनेको उद्यत सुयोग्य शिष्यको धिक्कारने वालेको मैं भी गुरु नहीं मानूंगा।

गुरु विना ज्ञान कहाँ ? अतः गुरु करनाही चाहिये। तेजस्वी ब्रह्मचारीने यह ऊहापोह करके निश्चय किया कि रागद्वेष—स्वार्थ इत्यादि वृत्तियोंसे जो गुरुदेवगण अभिभूत हो रहे हैं ऐसे मानवीय गुरुओंसे मुझे कुछ न मिल सका। अतः उन्होंने परमगुरुओंके गुरु और देवोंके आदि देव सूर्यनारायणकोही गुरु बनाकर समस्त ज्ञान प्राप्त कर लिया।

आदर्श गृहस्थ जीवनमें भी उन्होंने इसी प्रखरता और प्रदीप्त वृत्तिका परिचय दिया। उन्होंने आदित्य वेद आम्नायको एक निराला और सुनियमित स्वरूप प्रदान करके सर्वविद्वज्जन समादृत बना दिया, और अपने ज्ञानगुण गौरवकी धाक सबके हृदयोंपर बैठा दी।

वह महा प्राज्ञ था, वह परम विचक्षण था, वह अपरिमेय ब्रह्म-ज्ञानवाला था, वह अनुपम चमत्कारी योगी था। वह परम्पराओंको पलटकर नया रास्ता बनानेवाला क्रान्तिकारी महर्षि था।

सब विषयोंमें अपरिमेय और सर्वश्रेष्ठ था वह !

सूर्यका प्यारा शिष्य याज्ञवल्क्य वास्तवमें अपने कालमें ज्ञानविज्ञान भास्कर ही था।

हिन्दूधर्ममें अब भी उसका प्रखर प्रकाश फैला हुआ है—और वह इसी प्रकारसे फैलता रहेगा।

इसके पश्चात भी योगीश्वरके समान कोई मनुष्य भूतलपर अवतरित नहीं हुआ। मैत्रेयी और कात्यायनीसी आदर्श ब्राह्मणी भी फिर पैदा नहीं हुई, यही खेदका विषय है।

जीवन लीलाकी पूर्णाहुति योगमार्गसे देकर, किसीदिन शोरगुल मचवाये बिनाही, याज्ञवल्क्य विदा होगये।

योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्

उन्होंने कहा था "**अहम् ब्रह्मास्मि,**" मैं ब्रह्मही हूं। और वह जो प्रकाशपुंज सूर्यलोकमें परमपुरुष विराजमान है वही आदित्यब्रह्म है। मैंभी वह आदित्यब्रह्म हूँ। यही कहते कहते वे किसीदिन आदित्यब्रह्ममें लीन होगये। योगियोंका मोक्षमार्ग यही है। उस आदित्यब्रह्मको जाननेवालेही मृत्युको जीतनेमें सफल होते हैं—जन्ममरणके कुचक्रसे बचनेका कोईभी दूसरा मार्ग नहीं है।

—०—

याज्ञवल्क्यका उपकार

जितना परमोज्ज्वल चरित्र है परम योगीश्वर याज्ञवल्क्यका उतनाही उपकार भी है उनका सनातन हिन्दू धर्म और समाजपर। अलौकिक चमत्कारोंकी मणियोंसे विजड़ित आदर्श एवं आदरणीय सात्विक जीवन उज्ज्वल भी है और मोहक भी है। उनका ब्रह्मचर्याश्रम, उनका गृहस्थाश्रम, उनका वानप्रस्थ और सन्यस्ताश्रम, सब मोहकतासे भरपूर हैं; सबमें आदश है, सबमें पवित्रता है। साधारण तमोनिष्ठ ब्राह्मण परिवारके विद्यार्थी ब्रह्मचारीकी श्रेणीसे आगे निकलकर वह अति शीघ्रतापूर्वक तेजस्वी, तपस्वी और चमत्कारी ब्रह्मचारियोंकी कोटिमें परिगणित होगये थे—ऋगवेद पढते समय ही। फिर संकुचित क्षेत्रोंको छोड़कर याज्ञवल्क्यने मानवीय सम्पत्तिका पिण्ड छोड़कर दैवी सम्पत्ति का आश्रय ले लिया। सांसारिक गुरुओंमें—वैशम्पायन और शाकल्य सदृश विद्वद्रत्न गुरुवर्योंमेंभी याज्ञवल्क्यके समान तेजस्वी विद्यार्थीके गुरु बननेकी शक्ति नहीं थी। एकका दुराचारी, आलसी और आस्था-रहित आनर्त नृपतिके प्रति दब्बूपन, याज्ञवल्क्यको अस्वीकार्य और असह्य निकला। दूसरेका उतावलापन, क्रोधीपन और अ-पारखीपन त्याज्य ठहरा। पहलेने निःस्वार्थी ब्राह्मण बालकको स्वार्थी-सम्प्रदायकी दिशामें प्रेरित करनेमें असफल होकर कोप किया तो दूसरेने शुद्धभाव से गुरुसेवा परायणताकी ज्वलन्त निष्ठाको दूषित मान लिया। फलतः ऐसे गुरूओंके गिरोहोंसे निकलकर उन्होंने परब्रह्म स्वरूप सूर्यनारायणको अपना गुरु बनाना उचित समझा। इनदिनों यह बाततो सरलतासे

स्वाभाविक एवं नैसर्गिक मानली जाती है कि आदमी बंदरकी औलाद है, पर परब्रह्म या किसी देवी देवतासे मनुष्यका सम्बन्ध होनेकी बातको निरा अस्वाभाविक पागलपनही गिना जाता है। इस स्थितिमें हम यह आशा नहीं रख सकते कि सबही इस बातपर विश्वास कर लेंगे कि परब्रह्मस्वरूप सूर्यनारायणने याज्ञवल्क्यको दर्शनभी दिये थे, पहले वेदोंके साथही शुक्ल यजुर्वेद भी पढा डाला था और अटूट पाण्डित्यके साथ यह वरदानभी दे दिया था कि २० बार अपमानपूर्वक बोलनेवालेका शिर कटकर गिर जाया करेगा। फिरभी इन बातोंको समझने और माननेवालोंसे पवित्र भारतभूमि अभीतक शून्य नहीं होपायी है।

इस बारीकीको छोड़कर, शेष रहनेवाली इस बातसे किसीकोभी इनकार नहीं है कि अनायासही किसी अज्ञेय विधिसे ज्ञानार्जन करके याज्ञवल्क्य, अपनी समकालीन ऋषिमुनि विदग्ध मण्डलीके शिरमौर हो गये थे; और यह भी कि उनकी समता करनेवाला नर रूपधारी कोईभी कभी अवतरित नहीं हुआ। उन्होंने शुक्लयजुर्वेद संसारको दिया जो समस्त अर्थोंमें शुक्ल एवं परमोज्ज्वल है। साथ ही उन्होंने आदित्यब्रह्म वेद सम्प्रदाय और साम्नायकी पुनः संस्थापना की और ईश तथा वृहदारण्यक उपनिषदोंके रूपमें वह ब्रह्मज्ञान संसारको दिया जो ज्ञानियोंके ज्ञाननेत्रोंमें भी चकाचौंध पैदा करनेवाला है।

उन्होंने एक काम और किया—यज्ञोंका प्रचार और यज्ञविधियोंका संस्कार। हिन्दूधर्मके आधारभूत लोकपरलोक सम्बन्धी तत्वोंकी हीरकमणियोंको, याज्ञवल्क्यनेही खिरादपर चढ़ाकर निखारा है। इन्हींके

सुप्रयत्नसे आज ये वस्तुएँ सुडौल एवं प्रभापूर्ण हैं। महाराजाधिराज जनमेजय और शतानीकके ही गुरु, याज्ञवल्क्य, न थे, वह तो गुरु होगये थे उन राजर्षि विदेहजनकके भी जो इतने ब्रह्मविद्या निष्णात थे कि वेदव्यास महर्षि कृष्णद्वैपायनने अपने ऋषिरत्न पुत्र शुकदेवको भी धर्मतत्व ज्ञान प्राप्तिके लिये भेजना उचित समझा था। महाभारतके शांति-पर्वमें, बृहदारण्यक उपनिषदमें और कतिपय पुराणोंमें वह परम कल्याणप्रद ब्रह्मज्ञान आजतक सुरक्षित है जो परमयोगी याज्ञवल्क्यने ऋषिमुनियों, शिष्यों, ब्रह्मवादिनी निजपत्नियों और राजर्षि जनक आदिको समय-समयपर दिया था।

यदि हम थोड़ी गम्भीरतासे विचार करते हैं तो यही मानना पड़ता है कि परमयोगीश्वर याज्ञवल्क्यने भारतभूमिको पवित्र करते हुए उपर्युक्त रत्नराशि उत्तराधिकारमें न छोड़ी होती तो हिन्दूधर्म, वेद विद्या और ब्रह्मज्ञान, इस संसारमें, इतने परिपूर्ण भी न हुए होते जितने आज हैं। सगुणोपासना करनेवाले सनातन धर्मी विद्यावरिष्ठ और निर्गुणोपासना वाले आर्यसमाजी भी आज धड़ल्लेके साथ जिन मंत्रोंको सर्वप्रथम अपने पक्षमें उपस्थित किया करते हैं वे अधिकांशतः परमयोगीश्वर याज्ञवल्क्यकी देन ही हैं।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥

ब्राह्मण परब्रह्मके मुखसे उत्पन्न हुए, क्षत्रिय भुजाओंसे पैदा हुए, वैश्य उसकी जंघाओंसे और शूद्र पैरोंसे पैदा हुए। यह शुक्ल

यजुर्वेदनेही तो परम योगीश्वर याज्ञवल्क्यके द्वारा हमें बताया है निर्गुणोपासक इसका अर्थ थोड़ा समयानुकूल बनाकर करते हैं कि उस परब्रह्म विराट समाजस्वरूपके अंगमें ब्राह्मण मुखके समान हैं, क्षत्रियभुजाओं के समान हैं वैश्य जंघा ओंसे समान हैं। और शूद्र उस समाजस्वरूप विराट पुरुषके पैरके समान हैं।

'न तस्य प्रतिमा अस्ति' उसकी प्रतिमा नहीं होती; अर्थ सहित जिस मंत्रकी एक कडीको आर्यसमाजी विद्वान अपना सर्वोपरि आधार मानते हैं वह मंत्र भी हमें परमयोगीश्वरने ही यक्लशुजुर्वेद प्राप्त करके दिया है।

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्यनाम महद्यश : ।
हिरण्यगर्भ इत्येष माया हिंसीदित्येषा यस्मान्न जात इत्येषः ॥

और निर्विवाद रुपसे मोक्षमार्गोपायके सम्बन्धमें हम सब निर्गुण सगुण ब्रह्मोपासक इसी वेदमंत्रको तो दोहराया करते हैं कि

वेदाहमेतं पुरूषं महान्तम् आदित्य वर्ण तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

मैं उस सूर्यमण्डलस्थ तेजःपुंज, सर्वोत्कृष्ट अविद्यान्धकारसे परे रहनेवाले पुरूषको जानता हूँ। उस पुरूषत्तमको जानकर ही मृत्युसे पार होना होता है, मृत्युको लांघ जानेके लिये अन्य कोई मार्ग नहीं है। इस महामंत्रके आदित्य ही देवता हैं—नारायण ऋषि हैं। हमें यह रत्न भी योगीश्वरने ही तो दिया है [

समस्त देवपूजार्चनका आधार पुरुषसूक्त और उसका यह मंत्र (नहीं नहीं पूरा सूक्त) भी तो हमें याज्ञवल्क्यसे ही मिला है :—

सहस्र शीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपाद् ।

वैदिक देवपूजार्चनके लिये प्रयुक्त होनेवाले प्रायः सभी मंत्र याज्ञवल्क्य-द्वारा, सूर्यनारायणसे प्राप्त करके, प्रदान किये हुए हैं ।

शंकरकी पूजाके समय काम आनेवाले :—

१—त्र्यम्बकं यजामहे इत्यादि और

२—त्र्यायुषं जमदग्नेः इत्यादि

भी उन्होंने ही हमें प्रदान किये हैं ।

३—नमः शंभवाय च मयोभवाय च

नमः शंकराय च मयस्कराय च

नमः शिवाय च शिवतराय च

आदि भी उन्हींकी देन है ।

इसीतरह—

१—गणानांत्वा गणपति इत्यादि और

२—नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च

आदि भी परम योगीश्वर याज्ञवल्क्यसे प्राप्त हुए हैं ।

सूर्यनारायणकी पूजामें काम आनेवाले महामंत्र

१—आकृष्णेन रजसा....

२—उदुत्यं जातवेदसं........

३—चित्रं देवानामुदगादनीकं......

प्रभृति मंत्रोंके लिये भी संसार याज्ञवल्क्यका ही ऋणी है ।

शुभाशीर्वादात्मक और शुभकामनाओंवाले परम मनोहर एवं सुप्रभाव-भरित ये मंत्रभी शुक्लयजुर्वेदके साथही हमें मिले हैं:—

मधुवातः ऋतायते मधु क्षरंति सिन्धवः माध्वीर्नः सन्त्वोषधा ॥
मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवँ रजः मधु द्यौरस्तु नः पिता॥
मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुर्मो अस्तु सूर्यः माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥

वायु सुखकर हो, नदियां मीठे जलवाली वहें, औषधियां हमारे लिये सुमधुर रसवाली हों। हमारी रातें सुखकर हों, दिन क्षेमप्रद हों, माता पृथ्वी मधुररस सम्पन्न हो, द्यौ-पिता हमारे लिये मधुर जलकी वृष्टि करनेवाले हों। हमारी वनस्पतियां मधुर-रस-संयुक्त हों, हमारी गौएं सुमधुर दूध देनेवाली हों और भगवान् सूर्यनारायण हमारे लिये आल्हाद-प्रदायक हो।

संसारसुख और सार्वजनिक स्वदेशभक्तिकी भावनाकी मधुर रसधारा मंत्रोंके सिवा हमें कहाँ मिल सकती हैं?

पयः पृथिव्यां पयः औषधीषु,
पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः।
पयस्वतीः प्रदिशः सन्तुमह्यम् ॥

पृथ्वी अमृतोपम रसधार वाली हो, लतावृक्षादि भी अमृतोपम रस समन्वित होजायें, हमारे लिये आकाश और अन्तरिक्षमें अमृतकी रसधार हो और हमारी दशों दिशाओंमें अमृतोपम आनंद एवं सुख रसकी धाराएं बहती रहें।

हिन्दू संस्कृतिकी यह भावना बाह्य जगतके साथ है। पर अपने लिये हिन्दू नरनारी परम पवित्रता चाहते हैं। इस भावनाके मंत्र भी जैसे कल्याणकारी हमें याज्ञवल्क्यकी कृपासे मिले हैं, वैसे पहले प्राप्त न थे :—

पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः
पुनन्तु मा पितामहाः
पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा।
पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः
पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै ॥

......

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसाधियः
पुनन्तु विश्वाभूतानि जातवेदः पुनीहिमा॥

......

पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देवदीद्यत
अग्ने क्रत्वा क्रतूँरनु ॥

......

यत्ते पवित्र मर्चिष्यग्ने विततमन्तरा।
ब्रह्म तेन पुनातु मा ॥

सोम सम्पादक पितर शतायु बनाते हुए हमें पवित्र करें। पितामह और प्रपितामहसे मुझे पुनीत आयु प्राप्त हो। देवजन मुझे पवित्र

[illegible] करें। हे अग्नि देव आप शुद्ध

पवित्रतासे मुझे पुनीत बनाइये। हमारे यज्ञोंकी ओर निरखकर आप हमारी कृतियोंको भी पवित्र कीजिये।

राष्ट्रभक्त हिन्दू क्या चाहता है—यह भी शुक्लयजुर्वेदसे पूछिये :—

शिरो मे श्रीर्यशोमुखंत्विषि : केशाश्चस्मश्रूणि।
राजामे प्राणो अमृतं सम्राट। चक्षुर्विराट श्रोत्रम्॥

मस्तक शोभासम्पन्न हों, मुख यश सम्पन्न हों, केश मूंछ इत्यादि कांतिवाले हों, आंखें तेजयुक्त और कान शोभाशील एवं सामर्थ्ययुक्त हों।

जिह्वा मे भद्रं वाङ्महो मनो मन्युः स्वराडमामः।
मोदाः प्रमोदा अङ्गुली रङ्गानि मित्रं मे सहः॥

जिह्वा शुभवाणीवाली हो, लोकमान्य हो। मन मानवाला हो। मेरा राग स्वराज्यक्षम हो। मेरी अंगुलियोंमें आनंद हो। मेरे शरीरावयव मोदप्रमोदमय हों। मेरे मित्र शत्रुओंका नाश करनेवाले हों।

बाहू मे बलमिन्द्रियं हस्तौ मे कर्म वीर्यम्
आत्मा क्षत्रमुरो मम।

मेरी भुजाएँ बल सम्पन्न होजायँ। हाथ बलवान और कार्यक्षम हों। मरी आत्मा और मेरी छाती धैर्यसे संकटोंका सामना कर सकनेवाली हों।

पुष्ठि मे राष्ट्रमुदरमूँ सौ ग्रीवाश्च श्रोणी
उरू अरत्नी जानुनी विशो [illegible]

मेरी पृष्ठ राष्ट्रदण्डके समान सर्वाधार हो, मेरे पेट, कंधे, कंठ प्रदेश, कटि, छाती, जांघें आदि सर्वावयव पुष्ट हों।

प्रति क्षत्रे प्रतिष्ठामि
राष्ट्रे प्रत्यश्वेषु प्रतिष्ठामि गोषु।
प्रत्यङ्गेषु प्रतितिष्ठाम्यात्मन्प्रति
प्राणेषु प्रतिष्ठामि पुष्टे प्रति
द्यावा पृथिव्योः प्रतिष्ठामि यज्ञे।

तेजस्वी क्षात्रवृतिवालोंमें, मैं, प्रतिष्ठा सम्पन्न होऊं, राष्ट्रभरमें प्रतिष्ठा पूर्ण होऊं। घोडों और गौओं सहित प्रतिष्ठा सम्पन्न होऊं। मैं चित्तसे, प्राणसे, आत्मासे, पुष्टिसे, प्रतिष्ठा परिपूर्ण होऊं। पृथिवीपर मेरी प्रतिष्ठा हो, गगनमें मेरी प्रतिष्ठा ध्वनि गूंजे। यज्ञोंमें भी मैं प्रतिष्ठाप्राप्त होऊं।

हिन्दूका धर्म मेधावी होना है, मूरख और दरिद्र एवं अप्रतिष्ठित होना नहीं है। इसी लिये :

मेधा मे वरूणो ददातु मेधामग्नि प्रजापति :।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे॥

वरुण देवता मुझे सद्बुद्धिवान बनायें। अग्निदेव, प्रजापति, इन्द्रदेव, वायुदेव, और परब्रह्म सूर्यब्रह्म देवता मुझे मेधासम्पन्नता प्रदान करें।

सामाजिक, वैयक्तिक और राष्ट्रीय भावनाओंकी कल्पनाके साथ महान ... याज्ञवल्क्यने दिया है।

हिन्दू, भावनासे, साम्राज्यवादी हैं । साम्राज्यवादी अमरीका भी है, तब ही तो अमरीकामें गोराशाही-साम्राज्य स्थापित करके और वहाँके आदिम निवासी रैड-इंडियनोंका कलेवा करते हुए, आज अमरीका संसारभरको, तरकीबोंसे, अपने जुएमें जोतनेके लिये यत्नशील है। साम्राज्यवादी कम्युनिस्ट—साम्यवादी रूसभी है जो दुनियांभरको मजदूर-मंडली बनाकर अपने देशके मुट्ठीभर विज्ञ लोगोंका क्रीतदास बनाना चाहता है। आज अमरीकाके साम्राज्यवादको रूस पूंजीवादात्मक साम्राज्य-वाद बताता है और अमरीका उसका नाम लोकतंत्रवादात्मक राष्ट्र-संघ रखता है। नाम, भावना, विधियोंमें थोडा अन्तर अवश्य है, पर तत्त्वतः दोनों साम्राज्यवादी ही हैं । पूर्वकालके साम्राज्यवादके अंग-प्रत्यंगोंको, एक हदतक अधीनता स्वीकार करलेनेके बाद—जो अधिकांशत नृपतिके शिर और कंधोंका ही भार बनकर रह जाती थी—आन्तरिक रीतिसे असाधारण स्वाधीनता रहा करती थी। इन दिनोंके नवोत्थित लोकतंत्रात्मक साम्राज्यवादमें प्रत्येक नरनारीका गार्हस्थिक, सामा-जिक और धार्मिक जीवनभी पराधीनता-शृंखलासे बंधा हुआ रहता है। हिन्दू साम्राज्य-भावनाकी एक झलक याज्ञवल्क्य द्वारा प्राप्त वेद मंत्रोंमें इस प्रकारकी मिलती है :—

आब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् ।
आराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम् ।
दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः

निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु
फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्
योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

हे ब्रह्म! हमारे राष्ट्रमें तेजस्वी विद्वान ब्राह्मण पैदा हों। पराक्रमी, धनुर्धारी और महारथी क्षत्रिय हों। हमारे यहां पुष्ट और दूध देनेवाली गौएं पैदा हों। उत्तम भारवाहक बैल पैदा हों। अत्यन्त चपल घोड़े हों। सर्वाङ्ग पूर्ण एवं सद्गुणागार स्त्रियां पैदा हों। निरन्तर विजयी होते चले जाने वाले सेनापति और महासेनापति पैदा हों। महाराजको सर्वतोभावेन गुणमण्डित एवं विद्वान पण्डित सभाके लिये मिलें। सुयोग्य युवराज प्राप्त हों। प्रार्थनानुसार देशमें यथासमय और यथास्थान वर्षा होती रहे। फलधान्यादिकी भरपूर फसलें पकती रहें। समस्त जनताका योगक्षेमकार्य सुचारु रूपसे चलता रहे।

इस प्रकारकी भावना सहित याज्ञवल्क्य परिकल्पित हिन्दू साम्राज्य समुद्रके इस छोरसे उस छोरतक तथा पृथिवीके इस छोरसे उस छोरतक रामराज्यके समान होता है। रामराज्य और रावणराज्यमें भावनाओं और आदर्शोंका जो अन्तर रहता है, वही अन्तर हिन्दू साम्राज्यवादके सर्व-मंगल-संयुक्त स्वरूपमें और अन्य अनार्य-साम्राज्य-

इसी लिये हिन्दू साम्राज्यवाद, तीर्थयात्रा प्रसंग रहित, व्यापार आदि शोषण कार्योंके निमित्त एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तमें आनाजाना भी सदोष एवं प्रायश्चित्त योग्य मानता है ।

परम योगीश्वर याज्ञवल्क्यने ही हमें यह सब कुछ दिया है । उन्होंने हमें शिव-संकल्प-मंत्रोंका मुक्ताहार भी उत्तराधिकारमें दिया है:—

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं-
तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरं गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं-
तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु ॥

दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः

७ परम योगीश्वर याज्ञवल्क्य—

परब्रह्म सूर्यनारायणसे शुक्लयजुर्वेद प्राप्त करके हिन्दूधर्म और ज्ञान गरिमाकी स्थापना करनेवाले महा ऋषीश्वरका ज्ञानगर्भित एवं उपदेशप्रद जीवनचरित। मू. १॥)

श्रीरामदेव पाठक रचित

८ मिहिर महिमा विकास—

अर्थात सूर्योपासना। वेद–पुराण–सम्मत सप्रमाण संक्षिप्त ग्रन्थ। मू. ।॥)

श्रीप्रफुल्ल रचित

९ दुंदुभी—

शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंमें धर्मप्रेम और स्वजाति हित–हुताशन जगानेवाली कविताओंका कोष। मू. ॥)

श्रीसुबोध मिश्र कृत

१० समाजकी बलिवेदी—

सामाजिक नाटक—उपदेशप्रद और परम रोचक। मू. ॥=)

प्राप्तिस्थान

(१) "शाकद्वीपीय ब्राह्मणबन्धु" कार्यालय
४४, बाबुलनाथ चाल, चौपाटी, बम्बई ७

(२) पण्डित निरंजन शर्मा अजित,
ज्ञानमंदिर, ४८ बाबुलनाथ चाल, बम्बई ७

(३) पण्डित नाराणजी मूलजी,
धार्मिक ग्रन्थोंके प्रमुख व्यापारी, नरनारायण मंदिर,
कालबादेवी रोड, बम्बई २